राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की साहित्य और संस्कृति-पत्रिका

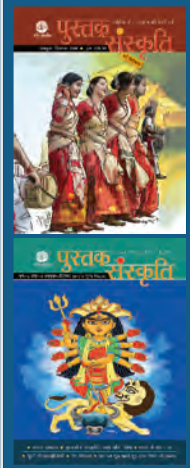

द्विमासिक

पुस्तक संस्कृति

द्विमासिक पत्रिका का शुल्क एक अंक की कीमत ₹ 40.00 पंजीकृत डाक से भेजने के व्यय सहित वार्षिक सदस्यता ₹ 225.00 (भारत में) विदेश में ₹ 1000.00	सदस्यता शुल्क राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के नाम ड्राफ्ट अथवा ई–बैंकिंग से भेज सकते हैं।	Bank : Canara Bank Branch : Vasant Kunj New Delhi-110070 Acc.no.: 3159101000299 IFSC : CNRB0003159

nbt.india

संपादक, पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़–II, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 (भारत)

संपर्क : 91–11–26707758, 26707876

ई–मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

पुस्तक संस्कृति अब निम्न स्थानों पर भी उपलब्ध है–

1. गुगलानी ब्रदर्स, 96 मॉल रोड, किंग्सवे कैंप, दिल्ली-110009. फो.: 9312125847
2. पांडे बुक स्टोर, 132, जी.जी. मेन रोड, जी.टी.बी. नगर के पास, गेट नं.4, मेट्रो स्टेशन, दिल्ली-110009. फो.: 011-49405845
3. शुक्ला बुक स्टोर, जी.जी. मेन रोड, जी.टी.बी. नगर के पास, गेट नं.4, मेट्रो स्टेशन, दिल्ली-110009. फो.: 9953185805
4. गीता बुक सेंटर, जे.एन.यू., गंगा छात्रावास के पास, न्यू कैंपस, नई दिल्ली-110067. फो.: 9873352269
5. जवाहर बुक सेंटर, पुस्तकालय भवन के पास, जे.एन.यू., नई दिल्ली-110067. फो.: 9818390503
6. हेम बुक सेंटर, पुस्तकालय भवन के पास, जे.एन.यू., नई दिल्ली-110067. फो.: 9810985436
7. सेंट्रल न्यूज एजेंसी प्रा. लिमिटेड, पी-20, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001. फो.: 011-41541111
8. रामगोपाल एंड संस, शंकर बाजार, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001. फो.: 9427306159
9. रोशन लाल एंड संस, 20, बंगाली मार्केट, नई दिल्ली-110001. फो.: 9811220234
10. पांडे बुक स्टोर, लक्ष्मी नगर, यू-110, दिल्ली। फो.: 9717264572
11. टॉपर्स लॉ हाउस, एल जी-2, यू-110, विकास मार्ग, दिल्ली। फो.: 011-47566672
12. बुधनिया बुक शॉप, यू-86, दिल्ली। फो.: 9810174248

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
अतुल वर्धन

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक : पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित :
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-4; अंक-3; मई-जून, 2019

>> **'लोक संस्कृति' विशेषांक** <<

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* — 2

पाठकीय प्रतिक्रिया — 3

विरासत — **लोक और लोकातीत**—*विद्यानिवास मिश्र* — 4

आलेख — **बुंदेलखंड की प्रमुख लोक कलाएँ**—*डॉ. बहादुर सिंह परमार* — 7

कहानी — **सात बहनों की कुछ लोक कथाएँ**—*डॉ. सुनीता* — 9

आलेख — **छत्तीसगढ़ की तालाब लोक संस्कृति**—*राहुल कुमार सिंह* — 15

आलेख — **बिज्जी का लोक संसार और रुपहला पर्दा**—*रमेश कुमार सिंह* — 20

आलेख — **दूर-देश : इंडोनेशिया**—*प्रीता व्यास* — 24

आलेख — **लोक संस्कृति व लोक साहित्य : पर्याय हैं एक-दूसरे के**—*सुमन बाजपेयी* — 26

आलेख — **बस्तर और लाला जगदलपुरी**—*रुद्र नारायण पाणिग्रही* — 29

आलेख — **धरती, समाज और संस्कृति से जुड़े हैं उत्तराखंड के लोक गीत-लोक नृत्य**—*धर्मेन्द्र पंत* — 32

साक्षात्कार — **साहित्य अकादेमी लेखकों का घर है : श्रीनिवास राव**—*डॉ. आरती स्मित* — 35

आलेख — **लोक गीतों के दरवेश देवेंद्र सत्यार्थी**—*प्रकाश मनु* — 38

लेख — **राष्ट्रीय पुस्तक न्यास व लोक संस्कृति साहित्य**—*विजय कुमार* — 42

आलेख — **शोधार्थियों को विज्ञान लेखक बनने का एक सुनहरा 'अवसर'**—*डॉ. मनीष मोहन गोरे* — 44

पुस्तक समीक्षा — 47

पुस्तकें मिलीं — 59

साहित्यिक गतिविधियाँ — 61

लोकसंस्कृति की शक्ति को समझें

'लोकसंस्कृति' शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है, एक 'लोक' और दूसरा 'संस्कृति'। 'लोक' शब्द बहुत व्यापक है। इसका प्रयोग संपूर्ण चराचर, पृथ्वी से आसमान तक के लिए किया जाता है। जो भी इस संसार में है वह लोक में है, इससे भी आगे जिसे हमने देखा नहीं है, पर जिसके संबंध में विचार होता रहा है, उसके लिए 'परलोक' शब्द का प्रयोग है। लोक के सीमित अर्थ को व्यक्त करने के लिए स्वलोक का भी प्रयोग है। प्रत्येक का अपना लोक है।

लोक के समान संस्कृति शब्द का भी प्रयोग बहुतायत में होता है। संस्कृति का संबंध मानव से है। प्रकृति में मनुष्य के अतिरिक्त जीव-जंतु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि सभी कुछ हैं, पर उनमें संस्कृति अपेक्षित नहीं है। संस्कृति का संबंध मानव से ही है। यह मानव का गुण है, मानव में ही प्रकृति में रहते हुए प्राकृतिक अवस्था से आगे बढ़ने की बुद्धि है। यही संस्कृति के विकास का मूल है। प्रकृति से आगे बढ़ना, ऊपर उठना संस्कृति है। इस रूप में संस्कृति मानव के सीखे हुए व्यवहार की समग्रता है।

लोक और संस्कृति शब्दों को मिला कर जब हम लोकसंस्कृति शब्द का प्रयोग करते हैं तब इसका अभिप्राय प्रायः लोक (क्षेत्र) विशेष की सामूहिक भावना/चेतना की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति होता है। लोक ने जिस आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, परंपरा को जीवन पद्धति के रूप में अपना लिया और जिसमें वह रम गया, वह उसकी संस्कृति है। लोकसंस्कृति की अभिव्यक्ति उसकी सामुदायिक चेतना में और उस चेतना के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहारों में होती है। मिल-जुल कर गाना, बजाना, नृत्य करना, त्योहार मनाना, जन्म-मरण के संस्कार, विवाह, उत्सव आदि के अवसरों पर लोकसंस्कृति व्यक्त होती है। इसके साथ ही आँचलिक मान्यताएँ, भावनाएँ, कथाएँ, मिथक, विश्वास, लोक परंपराएँ, बिम्ब, प्रतीक, साहित्य, लोक नायक आदि सभी लोकसंस्कृति का निर्माण करते हैं।

लोकसंस्कृति परंपराओं से समृद्ध हुई है। लोकसंस्कृति के विकास में परंपराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परंपराओं में समूह/समुदाय का अनुभव निहित रहता है। उसकी शक्ति और प्रभाव कानूनों से अधिक है। इसकी व्यापकता इतनी अधिक है कि विश्व का कोई भी देश और समाज ऐसा नहीं है जिसमें परंपराएँ न हों। लोकसंस्कृति से परंपराओं को पृथक नहीं किया जा सकता।

लोक विश्वास, लोकसंस्कृति के संरक्षक हैं। लोक विश्वास के पीछे कोई वैज्ञानिकता हो, यह आवश्यक नहीं है। पर परंपरागत रूप से कुछ धारणाएँ मानस मन में अपना स्थान बना लेती हैं, वे ही लोक विश्वास हैं। विज्ञान संपूर्ण विश्व में समान है, लोक विश्वास अलग-अलग समाजों में अलग-अलग होते हैं।

आदिकाल से ही लोक विश्वास प्रत्येक समाज में रहे हैं। इसी प्रकार लोक देवताओं का, लोकसंस्कृति में विशेष स्थान है, प्रकृति की उदारता और प्रकोप को समझने के क्रम में बुद्धि की कुछ सीमाएँ हैं, जब प्रकृति के रहस्य को समझने में हम असमर्थ होते हैं तब किसी आदिशक्ति के होने का विचार हमारे मन-मस्तिष्क में विकसित होता है। इस विचार में ही देवताओं का होना निहित है। वासुदेवशरण अग्रवाल मानते हैं कि लोकसंस्कृति में दो प्रकार के देवता हैं-एक वैदिक देवता और दूसरे लौकिक देवता। लोकसंस्कृति में वैसे तो दोनों देवताओं का स्थान है, तथापि लोक देवताओं की मान्यता सर्वाधिक है। लोकसंस्कृति में एक स्थानिक देवता भी होते हैं। प्रत्येक समुदाय, क्षेत्र में इन देवताओं की मान्यता है।

लोकसंस्कृति का सर्वाधिक प्रभावी रूप है, उसमें निहित एकता स्थापित करने की शक्ति से हजारों वर्षों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोकसंस्कृति ने न केवल अगली संतति को परंपराओं से परिचित कराया, अपितु व्यक्ति/समाज को जोड़कर भी रखा है। इस दृष्टि से लोक कथाओं, लोक गीतों और लोक नायकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

आधुनिक समाज में लोकसंस्कृति और लोक कथाओं को लेकर दो प्रकार के विचार देखने को मिलते हैं। जिस तेजी से तकनीक और प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है और उसका मनुष्य द्वारा उपयोग बढ़ा है, उसके प्रभाव के कारण जो सामाजिक रूपांतरण हो रहा है, उसके परिणामस्वरूप परंपरागत जीवन और मूल्य प्रभावित हुए हैं। एक नया समाज, नए मूल्य और नई जीवन-शैली विकसित हुई है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि रहन-सहन, वेश-भूषा की विविधताएँ सीमित हो रही हैं। इसके साथ ही आधुनिक शिक्षा के प्रभाव ने लोकसंस्कृति की लोक मानस पर पकड़ को कमजोर किया है। शिक्षित युवा वर्ग का स्थानिक मोह भंग हुआ है, उसके लिए अपनी-पराई संस्कृति और मूल्यों का विचार शिथिल पड़ा है। वह परंपरागत मूल्यों और जीवन से अपने को मुक्त अनुभव करता है।

दूसरी ओर एक विचार लोकसंस्कृति के संवर्द्धन का है। सांस्कृतिक पहचान का आग्रह और अपने अतीत की खोज हमें लोकसंस्कृति की ओर जुड़ने के लिए मोड़ती है। यही कारण है कि तेजी से होने वाले आधुनिकीकरण के बावजूद आज अपनी-अपनी जातीय अस्मिता और जातीय स्वाभिमान का भाव प्रायः सभी वर्गों में बढ़ रहा है। आज भी हम लौकिक परंपराओं से मुक्त नहीं हैं। मांगलिक कार्यों में आज भी हम लोक परंपराओं का किसी-न-किसी रूप में पालन करते हैं। लोकसंस्कृति लोक परंपराओं के माध्यम से समाज के सभी वर्गों में व्याप्त है। यहाँ तक कि जिसे हम अभिजात्य वर्ग कहते हैं, वह भी लोकसंस्कृति की पकड़ से छूटा नहीं है।

लोकसंस्कृति और लोक कलाओं के भविष्य के संबंध में बहुत विचार किया जाता रहा है। प्रायः राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियों, सम्मेलनों और कार्यशालाओं में इस प्रश्न पर गंभीर विचार मंथन होता रहा है। यह उत्साहवर्द्धक है कि इन सम्मेलनों में कई सार्थक सुझाव भी आते रहे हैं। सभी की चिंता का मूल भाव लोकसंस्कृति को पल्लवित करने का है। इस दिशा में शासकीय और निजी स्तरों पर कई योजनाएँ बनाई जाती रही हैं। ये सब प्रयास अपनी जगह ठीक हैं। सरकार की सांस्कृतिक नीति कई बार हमें आश्वस्त भी करती है। पर एक बात तय है जब तक लोकसंस्कृति परंपराओं के रूप में घर-घर में विद्यमान रहेगी, तब तक यह सभी चुनौतियों का सामना करने में समर्थ रहेगी तथा हमारे जीवन और विचारों को प्रभावित करती रहेगी।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

पाठकीय प्रतिक्रिया

पुस्तकों से प्रेम करें, पुस्तकें हैं वरदान।
सबसे अच्छी मित्र यही, अकेला न रहे इंसान।।
हर प्रकार का ज्ञान छिपा, हर अक्षर हैं इनके मोती।
इनको जिसने अपना लिया, रहे ना उसकी किस्मत सोती।।
भाषा ज्ञान का भेद नहीं, सब देशों में मिल जाए।
किसी को एक ही पुस्तक, प्रसिद्धि शिखर पर ले जाए।।
विभिन्न रूपों में मिलती हैं, विषय भी हैं इनके अपार।
कीमत भी महत्त्वहीन हो जाए, जब अपना ले इन्हें संसार।।
निरक्षर को साक्षर कर दें, अज्ञानी में भर देती हैं ज्ञान।
पुस्तकों की महिमा ऐसी, लेखक को बना दे महान।।

मुकेश जैन,
19 अबुल फजल रोड, बंगाली मार्केट, नई दिल्ली

करना मत कभी ऐसी भूल, बंधु फाँकें न किताबें धूल।
ये किताबें ज्ञान की सागर, भर लो इनकी तुम भी गागर।
करता इनसे जो है प्यार, कर जातीं उसका ये उपकार।
सच्चा दोस्त ये कहलातीं, अकेले की बन जाएँ साथी।
देश-विदेश की सैर कराएँ, सामान्य ज्ञान ये बढ़ाएँ।
हर विषय पर डालें प्रकाश, झूमे इनसे धरती-आकाश।
सब भाषाओं में मिल जाएँ, भूमिका अपनी ये निभाएँ।
इन्हें रचते कई विद्वान, इनसे बढ़ती अद्‌भुत शान।
इतिहास हो या फिर भूगोल, कब कौन चुकाए इनका मोल।
'प्रसाद' करे इनका सम्मान, पढ़-पढ़ कर बन जाए विद्वान।

रामप्रदास शर्मा 'प्रसाद',
सिहाल (काँगड़ा) हिमाचल प्रदेश

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका प्राप्त हुई, धन्यवाद। अच्छा लगा। पत्रिका में प्रकाशित लेख खिलौना माटी का बहुत उत्कृष्टता व मनोयोग से छापा गया है। सामग्री संपूर्णता में है।

विपिन जैन,
गाजियाबाद

'पुस्तक संस्कृति' न्यास की ऐसी बेहतरीन पत्रिका बनकर उभरी है, जो संस्कृति, साहित्य और व्यक्ति समन्वय प्रस्तुत करती है।

डॉ. संदीप अवस्थी,
अजमेर

'पुस्तक संस्कृति' एक साहित्यिक श्रेष्ठ पत्रिका है। भाई चाँदशेरी को यहाँ पढ़ने का अवसर मिला। अधिक समय अवलोकन नहीं कर पाया। पत्रिका की संपूर्ण सामग्री पठनीय ही नहीं, बल्कि मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्पद भी है।

बद्रीलाल मेहरा 'दिव्य',
कोटा, राजस्थान

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' का मार्च-अप्रैल, 2019 अंक मिला—इसमें प्रकाशित रचनाओं का चयन व प्रस्तुतिकरण मन मोह लेता है। पुस्तकों की भी भरपूर चर्चा होती है। समीक्षा स्तंभ में अच्छी पुस्तकें ली गई हैं। इससे नई पुस्तकों की जानकारी मिलती है। आपने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से प्रकाशित पुस्तकों के अलावा दूसरे प्रकाशनों की पुस्तक समीक्षा भी दी है—यह सुखद है, इससे दूसरे प्रकाशनों से प्रकाशित पुस्तकों को भी जानने का अवसर मिलता है। अधिकतर देखने में यह आता है कि बहुत से प्रकाशन संस्थानों से मुद्रित पत्रिकाएँ प्रायः अपने ही प्रकाशन की पुस्तकों की चर्चा तक सीमित रहती हैं। इसके अतिरिक्त विमलेश चंद्र की 'दिल्ली में प्रथम रेलगाड़ी' और राधाकांत भारती की 'बौद्ध लामा का शरीर' प्रस्तुत कर आपने पाठकों की ज्ञानवृद्धि की है। चित्रांकन और साज-सज्जा मनमोहक है। एक और अच्छे अंक के लिए बधाइयाँ।

पुनीत कुमार शर्मा,
ज्योति नगर (पश्चिम), शाहदरा, दिल्ली

आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

संपर्क :
संपादक, पुस्तक संस्कृति,
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन,
5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-2,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
दूरभाष : 267-07758/07876/07700
ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

लोक और लोकातीत

विद्यानिवास मिश्र

28 जनवरी, 1926 को गोरखपुर, उत्तर प्रदेश में जन्मे श्री विद्यानिवास मिश्र संस्कृत के प्रकांड विद्वान, जाने-माने भाषाविद्, हिंदी साहित्यकार और सफल संपादक (नवभारत टाइम्स) थे। उनकी हिंदी और अंग्रेजी में दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इसमें 'महाभारत का कव्यार्थ' और 'भारतीय भाषादर्शन की पीठिका' प्रमुख हैं। ललित निबंधों में 'तुम चंदन हम पानी', 'वसंत आ गया' और शोधग्रंथों में 'हिंदी की शब्द संपदा' चर्चित कृतियाँ हैं।

अन्य प्रमुख कृतियाँ : स्वरूप-विमर्श, हिंदी और हम, आज के हिंदी कवि-अज्ञेय, गाँधी का करुण रस, चिड़िया रैन बसेरा, छितवन की छाँह, तुलसीदास भक्ति प्रबंध का नया उत्कर्ष, थोड़ी सी जगह दें, व्यक्ति-व्यंजना, सपने कहाँ गए, साहित्य के सरोकार, हिंदी साहित्य का पुनरावलोकन, भारतीय संस्कृति के आधार, भ्रमरानंद का पचड़ा, रहिमन पानी राखिए, राधा माधव रंग रंगी, लोक और लोक का स्वर, फागुन दुइ रे दिना, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, वाचिक कविता अवधी, वाचिक कविता भोजपुरी।

सम्मान : पद्‌म भूषण, पद्‌मश्री।

लोक देश का ही एक आनुभविक रूप है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति रुच/लुच से है, जिसका अर्थ प्रकाशित होना है और प्रकाशित करना भी है, जो सामने प्रकाशित दिख रहा है और जो प्रकाशित कर रहा है। इसके सजातीय शब्द हैं—आलोक, लोचन (आँख), आलोचना (अच्छी तरह देखकर विवेचन करना), रोचन (प्रकाशमान, सुंदर, शोभन, इसीलिए प्रीतिकर, प्रीतिकर संदेश, संतानोत्पत्ति का संदेश, इसी से संबद्ध फारसी का रोशन और रोशनी है), अवलोकन, प्रत्यवलोकन (पीछे की तरफ देखना), लौकिक दृश्य (व्यवहार के अर्थ में), लोकोत्तर (लोक में रहते हुए लोक से ऊपर उठने वाला), लोकायत (ऐसा मत जो प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता हो)। इस शब्द से संबद्ध अनेक शब्द यूरोप की भाषाओं में हैं, जिनमें यही अर्थ सूत्र की तरह व्याप्त है।

इस प्रकार लोक अपने में विशाल अर्थ क्षेत्र में समेटता है। जो भी दृष्टिगत संसार है अथवा जो भी इंद्रियगोचर संसार है, वह लोक है। इस लोक का अर्थ है—जो यहाँ है, जो प्रस्तुत है। लोक का विस्तृत अर्थ है—लोक में रहने वाले मनुष्य, अन्य प्राणी और स्थावर, संसार के पदार्थ; क्योंकि ये सब भी प्रत्यक्ष अनुभव के विषय हैं। लोक के अर्थ का और विस्तार करते हैं तो लोक-व्यवहार, लोक के द्वारा स्वीकृत व्यवहार या आचार-लोक के इस अर्थ को भी लाक्षणिक रूप में लेते हुए हम कहते हैं तीन लोक हैं—भूलोक (पृथ्वीलोक), भुवर्लोक (अंतरिक्ष) और स्वर्लोक (द्युलोक)। इन तीनों को 'त्रिलोकी' कहते हैं। पृथ्वी के उस पार को हम 'पाताललोक' या 'नागलोक' या 'असुरलोक' भी कहते हैं। इन सब प्रयोगों में यह अर्थ अभी व्याप्त है कि किसी सीमित और परिभाषित आकाश का नाम 'लोक' है। यह लोक अवधारणा मात्र नहीं, यह कर्म क्षेत्र है।

अधिकतर लोग, जो समझते हैं कि भारतीय चिंतनधारा इहलोक की उपेक्षा करती है, केवल परलोक की बात करती है, यह बिल्कुल गलत है। वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है। प्रत्येक कर्मकांड में लोक दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो लोक में जो वस्तुएँ सुंदर हैं, मांगलिक हैं उनका उपयोग होता है। सात नदियों का जल या सात कुओं का जल, सात स्थानों की मिट्टी, सात औषधियाँ, पाँच पेड़ों के पल्लव, धरती पर उगने वाले कुश, गाँव के कुम्हार के बनाए दीए और बरतन, गाँव के बढ़ई के गढ़े पीठासन, गाँव के शिल्पी के द्वारा तैयार की हुई वस्तुएँ, ऋतु के फल-फूल, ये सब उपयोग में लाए जाते हैं। बिना इनके कोई अनुष्ठान नहीं पूरा होता। दूसरे, लोककंठ में बसे गीतों और गाथाओं,

लोकाचार के क्रमों और लोक की मर्यादाओं का उतना ही महत्त्व माना जाता है जितना शास्त्र-विधि का! शास्त्र से शुद्ध विधि भी लोक-विरुद्ध होने पर अमान्य होती है। लोकाचार का अपना स्थान होता है। इसी प्रकार वेदमत, साधुमत और लोक मत—तीनों के बीच सामंजस्य रखने से ही कोई व्यवस्था पूर्ण मानी जाती है। वेदमत मानने का अर्थ है—निरंतर मनन करने से जो ज्ञान की धारा स्पष्टतर होती जाती है, उसके अनुसार अपना कर्तव्य-पथ निश्चित करना। साधुमत का अर्थ है—सदाचारी व्यक्ति के आचरण में जो निरंतर दिखाई पड़ता है, उसे मान्यता देना। लोक मत मानने का अभिप्राय है—लोक के द्वारा जो सर्वथा मान्य है, उसे आदर देना। समग्र दृष्टि इन तीनों मतों के सामंजस्य से बनती है।

भारतीय चिंतनधारा एकांगिता कभी नहीं स्वीकार करती। वह उसी को मानती है, जो संपूर्ण हो, सम्रग हो। शासन-व्यवस्था और न्याय-व्यवस्था ने भी लोक का प्रामाण्य स्वीकृत किया है। अदृश्य कर्म-विपाक के आधार पर या जन्मांतर के अधिकार के दावे के आधार पर न्यायालय निर्णय नहीं करता; जो भी साक्षी सामने आते हैं, वे दृष्ट प्रमाण देते हैं। कारण यह है कि जन्मांतर के अधिकार की बात करने से अधिकार का निर्णय कठिन हो जाएगा, लोक चलेगा नहीं। अदृष्ट या लोकोत्तर की भूमिका व्यक्ति के जीवन से कम नहीं है, परंतु लोक की उपेक्षा करके नहीं।

श्रीकृष्ण जैसे अलौकिक चरित्र में भी आग्रह है कि मुझे भी लोक यात्रा पूरी करनी है। यदि मैं न करूँ तो यह लोक नष्ट हो जाए। लोक-संग्रह के पथ पर ज्ञानी-से-ज्ञानी, विदेह-से-विदेह को अपने लिए नहीं, लोक के लिए चलना पड़ता है। जीवन की सार्थकता इसी में है कि 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः', उससे लोक उद्विग्न न हो और वह स्वयं लोक से उद्विग्न न हो। इसलिए इसे 'असिधाराव्रत' कहा गया है। इसी लोक के भीतर से होकर लोकोत्तर की राह जाती है।

इस संक्षिप्त भूमिका के साथ लोक की अवधारणा के विकास क्रम की कुछ चर्चा करना चाहेंगे। ऋग्वेद में लोक को दिशा से पृथक् किया गया है। विराट पुरुष के कानों से दिशाओं की उत्पत्ति हुई, उसके बाद लोक की हुई; इसका तात्पर्य यही है कि सापेक्ष देश के अनंतर लोक की उद्भावना हुई। ऋग्वेद में ही ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहाँ लोक का अर्थ है खुली जगह, आलोकमय स्थान, घेरे से उन्मोचन, खड़े होने की जगह जैसे—1. 'यो वो वृतभ्यो अकृणोद् लोकम्' (ऋग्वेद, 4/17/176) (जिसने आपको घेरों से बाहर करके खुले स्थान की राहत दी)। 2. 'आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकम्' (ऋग्वेद, 10/104/10) (इंद्र ने वृत्र (घेरे) को दूर किया और लोक अर्थात् खुलेपन की मुक्ति दी)। इसी लोक का प्रयोग यज्ञ के लिए निर्धारित स्थान के अर्थ में शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थानों में हुआ है—'तस्मा एतं पुरस्ताल्लोकं करोति यद्दीक्षितो भवति' (श.ब्रा., 6/2/2/27)। यज्ञ में दीक्षित होने के बाद अपने नए जन्मे रूपांतर के लिए अलग स्थान बनाता है अर्थात् वह नए लोक में अधिष्ठित होता है। यज्ञस्थल संपूर्ण लोकों का प्रतिरूप है। इस प्रकार शास्त्र में रंगस्थल भी त्रिभुवन का प्रतिरूप माना जाता है, और एक अधिक परिष्कृत और अनुभाव्य देशकाल की सृष्टि की जाती है, तभी नाट्य प्रत्येक देशकाल में हृदयस्पर्शी हो सकता है।

इसी प्रकार लोक अधिष्ठान बनता है, अधिष्ठान बनकर वह विराट पुरुष (ब्रह्मांड की पुरुषात्मक अवधारणा) में तीन स्तर बनता है। उनके पैर हैं भूलोक, उनकी नाभि है अंतरिक्ष (भुवर्लोक) और उनका सिर है स्वर्लोक। ये सभी अधिष्ठान एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इनमें अंतर नहीं है। यही इस रूपक का अभिप्राय है। इसमें भूलोक की महिमा इसलिए विशेष है कि उसी पर सब कुछ खड़ा होता है। पृथ्वीलोक में क्रियाशक्ति है, इसीलिए यहाँ क्रिया की समाप्ति भी है क्रिया का संहार भी है, यहाँ नश्वरता है; भुवर्लोक में इच्छाशक्ति है; स्वर्लोक में ज्ञानशक्ति है। इच्छा से क्रिया और क्रिया से ज्ञान में समाहार होता है; परंतु क्रिया में ही इच्छा-ज्ञान दोनों की प्रतीति होती है। क्रिया में ही देवता प्रतीत होते हैं।

विष्णु पुराण ने इस भूलोक को कमल के रूप में देखा है, विभिन्न देशों को पटल रूप में—'भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा पत्राणि लोकपद्मस्य' (वि.पु., 2/2/39)। पद्म कहने के पीछे अभिप्राय है कि जैसे कमल सूर्य के आलोक में प्रस्फुटित, पूर्णरूप से अभिव्यक्त होता है वैसे ही यह पृथ्वीलोक भी ब्रह्मांड की दिव्य शक्तियों से ऊर्जा ग्रहण करता है और विकसित होता रहता है। उसमें नश्वरता भी है, नैरंतर्य भी है। इस पृथ्वीलोक के साथ कमल का संबंध एक बात और द्योतित करता है। अथर्ववेद के 'पृथिवी सूक्त' में कहा गया है कि पृथ्वी को कमल की भेंट देवताओं ने सूर्य और उषा के विवाह में दी, उसी में पृथ्वी की पहचान, उसकी गंध समा गई ('यस्ते गंधः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे')। इसका अर्थ यह है कि प्रकाशधर्मिता तो सृष्टि के पहले सूर्योदय में मिली, पर प्रकाशधर्मी कमल की सुगंधि पृथ्वी की है, पृथ्वी की क्रिया की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इहलोक की पहचान प्रकाशित होने से, प्रकाशित होकर क्रियाशील होने से और क्रियाशील होने के कारण ही मरणधर्मा होने से होती है। यह मरणधर्मा होना कोई अभिशाप नहीं है। हमारी चिंतनधारा में बार-बार मरने और बार-बार जन्म लेने से एक ओर छुटकारे के उपायों की चिंता है, दूसरी ओर इस छुटकारे को अपर्याप्त मानकर बार-बार मुक्त होकर भी उनके छुटकारे के लिए चिंता करने हेतु स्वेच्छा से इस लोकयात्रा में बँधने पर भी बल है। तथागत का एक अर्थ है—इस प्रकार पहुँचे हुए, और दूसरा अर्थ है—इस प्रकार आए हुए। गत और आगत दोनों के साथ 'तथा' जुड़ने पर तथागत ही बनता है। भगवान बुद्ध का महाकारुणिक रूप बार-बार बोधिसत्व होने के लिए आकूल होता है, लोक के पालक विष्णु का लोकानुग्रह भी अवतार लेकर ही पूर्ण होता है। ऐसी कोई पूर्णता हमें काम्य नहीं जो निश्चल, निष्पंद हो। अकेले सत्य से हमारा काम नहीं चलता, हम ऋत के साथ उस सत्य को जोड़कर सत्य की सत्यता निरंतर परखते रहते हैं।

श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कंध में भारतभूमि की चर्चा करते हुए कहा गया है—'प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो, न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते।'

इस लोक में मनुष्य-योनि पाकर प्राणी पुनर्भव (जन्म-मरण के चक्र) से छुट्टी पाने का यत्न नहीं करते, वे बार-बार जन्म लेकर इस लोक में सनातन रूप से चल रही भगवद्-लीला का आस्वाद लेना चाहते हैं और प्रत्येक जन्म को सफल करना चाहते हैं। सीमाओं में रहते हुए असीम को अपने साथ पाना, अपने में संपृक्त पाना, अपने को उनमें सराबोर पाना जितना अर्थ रखता है, क्या मुक्तात्मा होकर कूटस्थ ब्रह्म में एक हो जाना उतना महत्त्व रखेगा, यह लोक साधना के लिए है, सिद्धि की उपेक्षा के लिए है।

16वीं सदी के प्रसिद्ध साधक और 'भक्तिरसायन' तथा 'अद्वैतसिद्धि' जैसे ग्रंथों के प्रणेता मधुसूदन सरस्वती ध्यान कर रहे थे। गोरखनाथ पधारे और उन्होंने कहा कि मेरा अनुरोध स्वीकार करें। मेरे पास कई जन्मों की साधना का फल यह सिद्धिशिला है। इसे सौंपकर ही मैं पुनः नई साधना में प्रवेश करना चाहता हूँ। मधुसूदन सरस्वती ने पहले तो कहा कि मुझे सिद्धिशिला की कोई अपेक्षा नहीं; पर संत का आग्रह स्वीकार करके उन्होंने हाथ में शिला ली और उसे तत्काल गंगा की धारा में विसर्जित कर दिया। गोरखनाथ यह देखकर विस्मित हुए और प्रमुदित भी हुए-योग्य पात्र में मैंने सिद्धि का न्यास किया। इस कहानी का संदेश यह है कि इस लोक में सिद्धि का उतना महत्त्व नहीं जितनी साधना की निरंतरता का है। इस लोक की नश्वरता इसकी शक्ति भी है, क्योंकि इसी कारण क्रिया तीव्र होती है।

अब लोक के दूसरे अर्थ के क्षेत्र में चलें। लोक का अर्थ है लोक में रहने वाले प्राणी और यहाँ दृश्यमान पदार्थ; विशेष रूप से सचेत प्राणी जिन्हें हम 'लोग' कहते हैं। यह लोक व्यवहार का नियंत्रक होता है। सबसे पहले भाषा-व्यवहार को ही लें। पतंजलि ने कहा कि लोक विशेष अर्थ में किसी शब्द या वाक्य का प्रयोग करता है, व्याकरण अर्थ नहीं देता, वह केवल शब्द और अर्थ के संबंध का नियंत्रण करता है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने यह सिद्धांत दिया कि—

धर्मस्यानवच्छिन्ना पन्थानो ये व्यवस्थिताः।
न तान् लोकप्रसिद्धत्वात् कश्चित् तर्केण बाधते।।

व्यवहार मात्र के जितने भी पथ व्यवस्थित हैं, निरंतर चले आ रहे हैं और लोक में मान्यताप्राप्त हैं, वे स्वीकार्य हैं, वहाँ तर्क के आधार पर खंडन नहीं किया जा सकता। यह लोक परंपरा की सटीक परिभाषा है, परंपरा निरंतरता है, व्यवस्था है और लोक संस्कृति है। इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें परिवर्तन नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि व्यवस्था, दूसरी व्यवस्था से विस्थापित होकर, नई व्यवस्था बनती रहती है। निरंतरता का अर्थ है कि पहले के अर्थ नए-नए अर्थों में समाते और उसे और पूर्ण बनाते जाते हैं। लोक स्वीकृति का अर्थ है, लोक के दैनंदिन व्यवहार में आकर वे जीवंत होते रहते हैं।

इस लोक की एक पहचान यह भी है कि यहाँ दुःख-ही-दुःख है, यहाँ तक कि भाव क्षणिक होने के कारण और दुःखमय ही हो जाता है, जैसाकि अश्वघोष ने 'सौंदरनंद' में कहा है—'क्वचिच्छीतं क्वचिद्घर्मः क्वचित् रोगो भयं क्वचित्। बाधतेभ्यधिकं लोके तस्मादशरणं जगत्।' (सौंदरनंद, 15/15) कहीं ठंड है, कहीं घाम है; कहीं रोग है, कहीं भय है। यही सब लोक में दुःख देता रहता है।

इसलिए इस संसार में कहीं ठौर नहीं है, चैन नहीं है। यही कारण है कि लोक में दुःख का शमन करने वाली जिज्ञासा है, दूसरे के दुःख को वरण करने वाली करुणा है। छोटे-छोटे लोक-सुख बड़े सुख का आभास देने के लिए आते हैं, चले जाते हैं। जैन वाङमय लोक-पुरुष की अवधारणा लोकहितपरायण लोक में तल्लीन स्थितपरग्य पुरुष की अवधारणा, जैसे कि वह एक समष्टि चेतना का स्तम्भ हो। 'चरकसंहिता' में पुरुष को लोक सम्मति कहा गया है-अर्थात् पुरुष लोक के बराबर होने पर ही प्रमाण पुरुष है। इसका अर्थ यह है कि जितने भाव लोक में होते हैं उतने पुरुष में होते। लोक पुरुष में भीतर-भीतर भिना रहता है। (चरक, 5/3)।

नाट्यशास्त्र के तीन प्रमाण माने गए—लोक, वेद तथा अध्यात्म (ना.शा., 25/120)। काव्य शास्त्र में लोक के साथ तादात्म्य आवश्यक माना गया है। नाट्य भी लोकवृत्त की ही प्रस्तुति है।

सारांश यह कि लोक एक ओर क्रिया का आश्रय होने के कारण स्थित है तो दूसरी ओर साक्षात क्रिया है। लोक में प्रचलित मान्यताओं के बारे में प्रश्न करने वाले और अपने भीतर से उत्तर पाने वाले संत इस लोक व्यापार को नया मोड़ देते हैं। जहाँ स्थिति कुछ जड़ता की ओर ले जा रही हो उसे नई गति देते हैं। इस प्रकार इस चिंतन धारा में लोक और शास्त्र एक-दूसरे के पूरक बने रहते हैं।

साथ ही, इसी लोक में रहते हुए जो लोग लोक के हित के लिए लोक से बाहर अपने को करके दूरगामी दृष्टि से कुछ सोचते हैं और उसे अपने जीवन में उतारते हैं, वे लोकोत्तर हो जाते हैं, वे अलौकिक हो जाते हैं। यह लोक का विरोध नहीं, लोक में अंतर्निहित, अपना ही अतिक्रमण करने वाले, प्रबल संकल्प का भाव है। हमारे यहाँ तीन एषणाएँ (प्रबल इच्छाएँ) मानी गई हैं-वित्त (एश्वर्य) एषणा, संतान की ऐषणा (उत्तराधिकारी के रूप में अपने सातत्य की एषणा) और लोक में यश की एषणा। दो एषणाएँ त्यागी जा सकती हैं, लोकैषणा नहीं त्यागी जाती। वह मोह बन जाती है।

आदमी सोचता है, मैं तो लोकहित के लिए जी रहा हूँ। यह सोचते-सोचते वह अपने भीतर भयावह अहंकार को स्थान देता है। इस अहंकार से मुक्ति के लिए लोक की प्रतिष्ठा से ऊपर उठना आवश्यक होता है। इसीलिए ही परमहंसों को लोक-बाह्य होना पड़ता है। वे जो कुछ करते हैं, लोक के लिए करते हैं, पर सोचते यही रहते हैं कि हम कुछ कर ही नहीं रहे हैं, हम हैं ही नहीं। हमारे भीतर वह सबके लिए कर रहा होगा, हम कहीं भी नहीं हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान बुद्ध, भगवान महावीर से लेकर परमहंस रामकृष्णदेव, रमन महर्षि, योगी अरविंद, महात्मा गाँधी, आनंदमयी माँ-ये सभी महाविभूतियाँ लोकोत्तर इसलिए हैं कि वे परम लौकिक हैं, वे संपूर्ण लोक में हैं। इसके साथ ही वे अपने को अकिंचनता की अंतिम सीमा तक निःस्व कर चुके हैं। वे 'स्व' कुछ रह नहीं गए, वे केवल पर और परात्पर हो गए हैं। यही लोक की सत्ता के भाव में रूपांतर है। भारतीय चिंतनधारा सत्ता को भाव की ओर ले जाने वाली धारा है।

बुंदेलखंड की प्रमुख लोक कलाएँ

प्रत्येक अंचल की सांस्कृतिक अस्मिता वहाँ की कलाओं में अभिव्यक्त होती है। जिस तरह प्रत्येक अंचल की माटी की महक अपने आप में अनूठी होती है उसी तरह लोक संस्कृति की अपनी एक खास पहचान होती है। लोक संस्कृति में कलाओं का अपना विशिष्ट स्थान होता है। लोक कलाओं के माध्यम से लोकानुभव को एक विशेष पहचान मिलती है तथा लोक की सौंदर्य दृष्टि लोक कलाओं में ही प्रकट होती है। बुंदेलखंड अंचल की सांस्कृतिक परंपरा बड़ी समृद्ध व प्राचीन है। इस लोक सांस्कृतिक परंपरा में कलाओं के विविध स्वरूपों में हमें दर्शन होते हैं। यहाँ की लोक कलाओं का इतिहास पुरातन है। आदिम अवस्था के कई शैलचित्र हमें बुंदेलखंड अंचलों की गुफाओं में मिलते हैं। छतरपुर जिले के देवरा व किशनगढ़ अंचल के दूरस्थ वनाच्छित प्रांतों की गुफाओं में प्रागैतिहासिक काल के शैलचित्र चित्रकूट, बाँदा, सागर तथा दमोह जिलों के अंदरूनी हिस्सों में भी प्राप्त होते हैं। इनसे यह सिद्ध होता है कि बुंदेलखंड अंचल की लोक कलाओं की परंपरा बड़ी प्राचीन व समृद्ध है।

लोक कलाओं के अनेक आयाम होते हैं। लोक मन जब प्रसन्नता से तरंगायित हो नाच-गा उठे तो नृत्य व गायन लोक कला का रूप ले लेती है, इसी तरह सुरुचिपूर्ण लेखन व चित्रांकन के माध्यम से लोक चित्रकला अपने को मुखरित करती है। इसी परिपाटी के काष्ठ, धातु तथा मिट्टी आदि को भी विभिन्न स्वरूप कलासाधक प्रदत्त करते हैं जिससे मूर्तिकला जीवंत हो उठती है। लोक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कलात्मकता देखने को मिलती है। बुंदेलखंड अंचल का ठसकीला लोकमन पर्वों व त्योहारों के विशेष अवसरों के साथ दैनंदिन जीवन में भी लोक कलाओं को आत्मसात किए है। लोक चित्रकला के लोक जीवन की आत्मा बसती है। यह लोक कला जीवन का अंग बनकर आदिम अवस्था से लोक से संपृक्त है। इसके माध्यम से जहाँ लोक अपने मनोविनोद के भावों को व्यक्त करता है, वहीं उसके मन में उमड़ते-घुमड़ते विचारों को चित्रों के माध्यम से प्रकट किया जाता है। लोक चित्रकला पारिवारिक रूप से हस्तांतरित होती रहती है। बुंदेलखंड कृषि प्रधान क्षेत्र है, जिससे कृषि कार्य में उपयोगी पेड़-पौधों, फूलों-फलों, पशु-पक्षियों, सूर्य-चंद्र तथा लताओं आदि को ईश्वरीय शक्ति मानकर उनका चित्रांकन बहुत किया जाता है। लोक चित्रों को बनाने में अंचल में उपलब्ध आटा, चावल, हल्दी, सिंदूर, रोली, घी, चंदन, गोबर, चूना, छुई, गेरू, गौरा पत्थर, महावर आदि का उपयोग किया जाता है। यहाँ की लोक चित्रकला को तीन रूपों में विभक्त किया जा सकता है—भूमि चित्रण, भित्ति चित्रण तथा अन्य वस्तुओं पर चित्रण। भूमि चित्रण के अंतर्गत चौक पूरना, गोबर से लीपना आदि प्रमुख हैं। चौक पूरने के पहले धरती को गोबर से लीपकर पवित्र किया जाता है, फिर कनक (गेहूँ का आटा), हल्दी, सिंदूर, गौरा पत्थर आदि से चौका पूरा जाता है। लोकचित्र चौकोर, आयताकार, गोलाकार व सीमा रेखा के मध्य बनाए जाते हैं। चौक घर के मुख्य द्वार पर, आँगन के बीच में, तुलसीघरा के पास, पूजा घर में तथा विवाह के समय मंडप में पूरे जाते हैं। चौक चतुर्भुजी तथा छह, सात, आठ, भुजीय भी पूरे जाते हैं। चौक में कलश,

डॉ. बहादुर सिंह परमार

जन्म : 16 जुलाई, 1963 को छतरपुर जिले के गाँव रानीपुरा।

प्रकाशित पुस्तकें : अमरकांत का कथा साहित्य, बुंदेली लोक साहित्य, सृजन की सार्थकता, लोक साहित्य में मानव मूल्य, बुंदेलखंड में छंदबद्ध काव्य परंपरा आदि। बुंदेलखंड का इतिहास बारह खंडों में संपादन। बुंदेली बसंत पत्रिका के संपादक। बुंदेली लोक साहित्य, संस्कृति व इतिहास के क्षेत्र में कार्य।

संपर्क : एम.आई.जी. 7, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : 7974217756

स्वास्तिक, प्रभुचरण, कमल व अन्य पुष्प-पत्तियाँ आदि भी बनाए जाते हैं। त्योहारों में नवरात्रि, दशहरा, दीवाली, दोज, देवप्रबोधनी एकादशी तथा कार्तिक पूजन में चौक विशेष रूप से पूरे जाते हैं। क्वाँर की नवरात्रि में नौरता के दौरान बालिकाओं को कलाओं की पूरी शिक्षा दी जाती है। वे चौक पूरने के साथ, लीपने, रंग बनाने की कला से परिचित होती हैं। इसी अवसर पर गायन लोक कला का भी विशेष रियाज हो जाता है। चढ़ाव के समय बनाया गया चित्र लोक कला का उत्कृष्ट नमूना है। भित्ति चित्रण के अंतर्गत बुंदेलखंड में विभिन्न रंगों से सूई या लकड़ी में रूई लपेटकर उसकी नोंक से चित्र बनाए जाते हैं। दीवारों पर चावल, महावर, हल्दी, गेरू, गोबर, शुद्ध घी, तेल, रोली, रामरज तथा फूलों के रस से चित्र बनाए जाते हैं। दीवारों पर पुतरियाँ, सुरातियाँ, स्वास्तिक, कलश, देवी-देवताओं के चित्र, हाथी, घोड़ा, मोर, हिरण, शेर, मछली, ध्वज, चरण, फूल, बेल, पत्तियाँ, सूरज, चंदा, दीप तथा वाद्य यंत्र आदि बनाने की परंपरा है। हरछठ, नागपंचमी, दुर्गा नौमी आदि अवसरों पर विशेष चित्रण किया जाता है। इसी तरह बुंदेलखंड अंचल में बरतन, लकड़ी, बाँस के टिपारे व डलियों आदि पर चित्रण की परंपरा पाई जाती है। विवाह मंडप के खाम को, पालकी तथा मिट्टी के बरतनों में भी पुतरियाँ, तोता, मोर, घुड़ला तथा फूल-पत्तियों की अनुकृति बनाने की परंपरा है। बुंदेलखंड अंचल में देह चित्रण की परंपरा भी मिलती है। मेंहदी, महावर से महिलाएँ व कन्याएँ हाथ व पैरों पर चित्रण करती हैं। गुदना गुदवाने की कला भी विद्यमान है। इसके तहत लोग खास तौर से महिलाएँ गुदना गाल की ठोड़ी पर बिंदु, बाँह पर सूरज, चंदा, फूल, पपीहा, मोरें, बिरछा, कोंचा में पुतरियाँ, फूल, प्रिय का नाम तथा पैरों में घोड़ा, फूल, बिछिया, पुतरियाँ आदि गुदवाती हैं।

मूर्तिकला भी बुंदेलखंड की धड़कनों के साथ धड़कती है। यहाँ के कुम्हारों, लुहारों के साथ-साथ घर-घर में मूर्तियाँ गढ़ने वाले हाथ विद्यमान हैं। महालक्ष्मी का हाथी तथा गनगौर की गौरा कुम्हारों के यहाँ से बनकर पूजी जाती हैं। ये प्रतिमाएँ काली मिट्टी की बनाई जाती हैं। इसी तरह बुड़की के अवसर घुड़ला मिट्टी के बनाए जाते हैं। पीतल के घुड़ला भी बुंदेलखंड में ढाले जाते हैं। बढ़ई द्वारा लकड़ी के हाथी, घोड़ा, तोता, शेर तथा चीता बनाने की लोक परंपरा है। ये खिलौने मेलों में बच्चों के लिए विशेष आकर्षण के केंद्र होते हैं। बुंदेलखंड अंचल के श्रीनगर (महोबा), ललितपुर, चंदेरी, टीकमगढ़ तथा छतरपुर में धातु की मूर्तियाँ गढ़ने वाले लोक कलाकार अपनी कला साधना में संलग्न हैं। अकती के अवसर पर पुतरा-पुतरियाँ कपड़ों की बनाई जाती हैं। कही-कहीं मिट्टी से भी पुतरा-पुतरियाँ बनाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त काष्ठ कला के अंतर्गत बुंदेलखंड में घरों के दरवाजे, चौखटें, मूसल, मथानी, पलंग, बच्चों की गाड़ियों के साथ बैलगाड़ियों में भी लोक कला के नमूने दृष्टव्य होते हैं। बच्चों के भौंरा, चकरी, चपेटा भी लकड़ी से बनते हैं, जो कला के नमूने हैं। धातु संबंधी शिल्प कलाओं में सुनारों के द्वारा गढ़े जाने वाले सोने-चाँदी तथा गिलट के जेवर उत्कृष्ट नमूने हैं। स्त्रियों के आभूषणों में बेंदी, झुमकी, लटकन, छागल, अकौना, हार, तिदानौ, बिचौली, लल्लरी, हमेल, बाजूबंद, बिछुआ, चूरा, मुंदरी, छला, हथपोस, लच्छा, पायलें, पैजना तथा झाँझें आदि प्रमुख हैं। बाँस की बनी वस्तुओं में बिजना, टोकरी, चंगेर, दौरिया, सूपा आदि लोक कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इनको बेहतर रंगों के संयोजन से रंगकर आकर्षक बनाया जाता है। बसोर मुख्यतः इनको रंगने में चटकीले रंगों हरा, लाल, पीला आदि का प्रयोग करते हैं। घर में महिलाएँ सरकंडा (सिनौआ) आदि से सूप तथा बिजना आदि बनाती हैं। इसी तरह खजूर के पत्रों व काँस से सिकौली बनाने की परंपरा बुंदेलखंड में पाई जाती है।

लोक मन की प्रफुल्लता लोक नृत्यों तथा गायन के माध्यम से प्रकट होती है। बुंदेलखंड का आम आदमी प्रत्येक ऋतु में नाचता-गाता है। लोक मन तरंगायित हो जब गाता है तो लोक गायन कला मुखरित होती है। सावन व भादों में लोक कंठों से सैरो, कजरी, सावन तथा आल्हा के बोल फूटते हैं। फसल काटते हुए लोग बिलवारी की टेर लगाते हैं—"रथ ठाँड़े करौ हो रघुवीर, तुमाये संगै हमहुँ चलें वनवासा खों।" बुड़की के समय लमटेरा, होरी के समय चौकड़ियाँ, फागें, कबीरा, राई आदि गाने की परंपरा विद्यमान है। काछी जाति के लोग विवाह, जन्मोत्सव व अन्य प्रसन्नता के अवसर पर कछियाई का गायन करते हैं जिसमें तमूरा, मँजीरा व ढोलक की थापों पर नाचने की परंपरा भी है। इसी तरह ढीमर जाति के लोक कला साधक तमूरा, कसावरी के साथ ढिमरयाई राग छेड़ते हैं जिस पर भी लोक नृत्य किया जाता है। "मइया तोरी धूराभरी पैजनियाँ, कौना गढ़ा दई पाँव पैजनियाँ" की धुनें देवी भक्ति की अचरी गुनगुनाता लोक मन इसी बुंदेलखंड में मिलेगा। धुबियाई व रावला के दौरान भी गायन एवं नृत्य दोनों कलाओं का प्रस्तुतीकरण होता है। दीवाली के समय मौनियों के साथ ढोलक व नगड़िया की मादक धुनों पर लोक कलाकार लाठी व पाई-डंडों के साथ नाच उठते हैं। वे अपने को कृष्ण सखा ग्वाल मानकर नाचते-गाते हैं। होली के अवसर पर फागें नगड़िया व ढोलक की थापों पर गाई जाती हैं। इस दौरान राई नृत्य की परंपरा भी विद्यमान है। राई नृत्य बुंदेलखंड का सबसे उत्तेजक व लोकप्रिय नृत्य है। इसमें मृदंग, झेला व झाँझों के साथ रमतूला की तान मनमोहक होती है। इन्हीं तानों के मध्य नर्तकी के कदम तीव्र गति से नृत्य करते हैं। इस दौरान कहरवा, टप्पा, ख्याल तथा चौकड़िया गाने की परंपरा है। इस नृत्य के अलावा बधाई नृत्य जन्मोत्सव के समय किया जाता है। जब बुआ चंगेर या झूला लेकर भाई के दरवाजे पर आती हैं तो बधैया गाकर नाचा जाता है। विवाह के समस्त संस्कार गीतों की धुनों के साथ संपन्न होते हैं। इस खास संस्कारों के अलग-अलग गीत हैं। इनमें लगुन लिखने से लेकर मटयाने तक के गीत हैं। बन्ना-बन्नी के साथ पंगत की ज्यौंनार होने पर गारी गाने की कला देखते ही बनती है। हरे मंडप के नीचे बैठी पंगत जब मधुर स्वर में अटारी से बोल सुनती है कि "मोय नए जजमान, कुत्ता पाल लो, कुत्ता की पूँछ जैसे समधी की मूँछ" तो श्रोताओं का मन बाग-बाग हो जाता है। गायन व नृत्य में वाद्य यंत्रों का विशेष योग रहता है। वाद्य यंत्र कलाओं के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। बुंदेलखंड में चार प्रकार के वाद्य यंत्र पाए जाते हैं। पहले प्रकार के तंत्र वाद्य होते हैं जिनमें तमूरा, सारंगी आदि शामिल हैं। दूसरे प्रकार के अवन, वाद्य होते हैं, जो चमड़े से मढ़कर बनाए जाते हैं जिनमें ढोलक, मृदंग, ढपला, खंजड़ी व चंग आदि आते हैं। तीसरे प्रकार के वे वाद्य होते हैं जो फूँक कर बजाए जाते हैं जिनमें रमतूला, बाँसरी, कंडील आदि आते हैं। इसी तरह चौथे प्रकार के घन वाद्य होते हैं जिनमें मँजीरा, झाँझें, झेला व कसावरी आदि आते हैं। इनको बनाना लोक कला का उत्कृष्ट नमूना हैं।

आज बुंदेलखंड अंचल की लोक कलाएँ भौतिकवादी सभ्यता के प्रभाव से प्रभावित हो रही हैं, अतः कुछ कलाओं को संरक्षण की आवश्यकता है। यदि समय रहते इन्हें न बचाया गया तो हमारी भावी पीढ़ी समृद्ध लोक कला से महरूम हो जाएगी।

सात बहनों की कुछ लोक कथाएँ

डॉ. सुनीता

जन्म : 29 जनवरी, 1954 सालवन, हरियाणा

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), पी-एच.डी.। शोध का विषय 'हिंदी कविता की वर्तमान गतिविधि : 1960 से 75 तक'।

संप्रति : कुछ वर्षों तक हरियाणा और पंजाब के कॉलेजों में अध्यापन।

लेखन और कृतियाँ : 'नानी के गाँव में', 'साकरा गाँव की रामलीला', 'रंग-विरंगी कहानियाँ', 'दादी की मुसकान', 'फूलों वाला घर' समेत लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित, खेल-खेल में बच्चों से बातें करते हुए लिखे गए सीधे-सरल भावनात्मक लेख 'खेल-खेल में बातें' शीर्षक से प्रकाशित। इसके अलावा देश-विदेश के महान युगनायकों पर लिखी जीवनीपरक पुस्तक 'धुन के पक्के', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के लिए 'देवेंद्र सत्यार्थी की चुनिंदा कहानियों' का अनुवाद।

दो बहनें (त्रिपुरा)

त्रिपुरा के एक छोटे से सुंदर पहाड़ी गाँव झिंगाना में दो बहनें रहती थीं। दोनों का स्वभाव बड़ा अच्छा था और वे हमेशा खुश रहती थीं। इनमें बड़ी बहन थी टुइचौंग और छोटी थी नुएंगी। उनके अच्छे स्वभाव और सीधेपन के कारण गाँव में सभी उन्हें प्यार करते थे। टुइचौंग और नुएंगी हर किसी के दुःख-दर्द में मदद करने को तैयार रहती थीं।

परिवार में इन दो बहनों के अलावा कोई और न था। वे अभी बहुत छोटी ही थीं कि उनके माँ-बाप गुजर गए। तभी से उन्होंने मेहनत करके गुजारा करना शुरू किया। किसी से कुछ माँगने के बजाय वे अपने खेतों में बड़ी मेहनत से फसल उगातीं और इज्जत की जिंदगी जीती थीं। वे अब अपने घर में अकेली ही रहती थीं। पर दोनों बहनों में आपस में बहुत प्यार था। बड़ी बहन टुइचौंग छोटी बहन नुएंगी को माँ की तरह प्यार करती थी और उसकी हर जरूरत पूरी करती थी।

एक बार वे दोनों बहनें अपने खेत में जा रही थीं। घर से खेत काफी दूर था। रास्ते में नुएंगी को प्यास लगी, पर आस-पास कहीं कोई झरना, नदी या तालाब न था। नुएंगी की प्यास बढ़ती जा रही थी। उसे लग रहा था, कहीं से दो घूँट पानी मिल जाए ताकि मुँह गीला हो जाए। वह बार-बार अपनी बड़ी बहन टुईचौंग से कह रही थी, "दीदी, कहीं से पानी ला दो ना। प्यास के मारे मेरा गला सूख रहा है।"

बड़ी बहन टुईचौंग ने उसे बहुत समझाया, "खेत के पास जो निकांग नाम का झरना है, वहाँ चलकर अपनी प्यास बुझा लेना। थोड़ा-सा रास्ता और बाकी है!"

पर नुएंगी बीच रास्ते में खड़ी हो गई और ठिन-ठिन करके जिद करने लगी, "मुझे तो अभी पानी चाहिए। वरना मैं प्यासी मर जाऊँगी।"

"दीदी, कहीं से भी लाओ, पर मुझे पानी लाकर दो। अब मैं एक कदम भी नहीं चल सकती", कहते हुए लगभग रोते हुए नुएंगी बीच रास्ते में पसर गई।

टुईचौंग बड़ी दुविधा में थी। वह नुएंगी को गोद में उठाकर भी खेत तक नहीं ले जा सकती थी।

उसने नुएंगी को फिर से मनाने की कोशिश की, "मेरी प्यारी बहन, बस थोड़ी दूर और चल लो, फिर तो पानी कहीं-न-कहीं से मिल ही जाएगा!"

नुएंगी ने टुईचौंग का हाथ झटक दिया और कहा, "नहीं, मुझे अभी पानी चाहिए। अभी लाकर दो!" कहकर वह जोर-जोर से रोने लगी।

अब टुईचौंग के पास कोई चारा न था। वह वास्तव में निर्मल जल वाली एक देवनदी थी, जो आसमान के राजा के कहने पर लड़की का रूप धारण करके इस गाँव में आई थी। उसे लगा कि समय आ गया है, अब मुझे अपने नदी रूप में प्रकट हो जाना चाहिए। नुएंगी जब प्यास से इतनी बेहाल है, तो दूसरे यात्रियों का भी तो यही हाल होता होगा।

नुएंगी अभी तक रो रही थी। अचानक उसने देखा कि उसके पास से ही एक झरना फूट पड़ा है और वह नदी बनता जा रहा है।

नुएँगी ने झट से अपने आँसू पोंछे और जी भर ठंडा पानी पिया। फिर मुँह-हाथ धो लिए।

उसके तुरंत बाद उसका ध्यान इस बात की ओर गया कि उसकी बड़ी बहन टुईचौंग तो कहीं नहीं है। उसने इधर-उधर दूर-दूर तक नजर दौड़ाई, पर उसे टुईचौंग कहीं दिखाई नहीं दी।

उधर टुईचौंग नदी बनकर बड़े वेग से बह रही थी।

बात राजा तक पहुँची, राजा ने अपने सेवकों को इस बात की खोज करने के लिए दौड़ाया कि पता करो, यह नदी अचानक कहाँ से फूट पड़ी है?

कुछ ही देर बाद राजा भी अपने तेज गति वाले सफेद घोड़े पर सवार होकर सेवकों के पीछे-पीछे चल पड़ा।

जल्दी ही सब एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ से झरना फूट रहा था। उसी के पास उन्होंने देखा कि एक किशोरी बड़ी उदास बैठी है। उदास होने के बावजूद वह किशोरी बहुत सुंदर थी। राजा ने नुएंगी से पूछा, तो उसने बताया, "मेरी प्यास की जिद के कारण ही मेरी बहन टुईचौंग नदी बन गई है।"

"जल्दी ही सब एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ से झरना फूट रहा था। उसी के पास उन्होंने देखा कि एक किशोरी बड़ी उदास बैठी है। उदास होने के बावजूद वह किशोरी बहुत सुंदर थी। राजा ने नुएंगी से पूछा, तो उसने बताया, "मेरी प्यास की जिद के कारण ही मेरी बहन टुईचौंग नदी बन गई है।""

यह कहते हुए उसकी सिसकियों की आवाज आने लगी। राजा भी सुनकर करुणा से भर गया।

कुछ देर बाद राजा का काफिला नुएंगी को लेकर राजमहल की ओर चल दिया।

राजमहल में पहुँचकर राजा ने नुएंगी से विवाह कर लिया। नुएंगी भी धीरे-धीरे ठीक होने लगी।

राजा नुएंगी से बहुत प्रेम करता था, इसी कारण बड़ी रानी नुएंगी से बहुत ईर्ष्या करती थी। वह अपनी सख्त आँखों से ही नुएंगी को हर वक्त आतंकित किए रहती थी। इसीलिए नुएंगी उससे बचकर रहती थी, पर काफी सहमी हुई-सी भी रहती थी।

विवाह के पाँच साल बाद नुएंगी ने एक बेटे को जन्म दिया। बड़ी रानी तो ईर्ष्या के मारे जल-भुन गई। उसने अपनी दासी से कहकर नुएंगी के बेटे को टुईचौंग नदी में फिंकवा दिया। साथ ही, नुएंगी को धमकी दी कि वह इस घटना के बारे में किसी को कुछ न बताए, नहीं तो उसके प्राण भारी संकट में पड़ सकते हैं।

अब तो नुएंगी पहले से भी ज्यादा सहमी रहने लगी।

समय बीतने के साथ-साथ नुएंगी के एक-एक कर सात बेटों को जन्म दिया। पर हर बार बड़ी रानी ने उन्हें टुईचौंग नदी में छुड़वा दिया।

टुईचौंग भले ही नदी बन गई थी, पर थी तो नुएंगी के बच्चों की मौसी ही न! इसलिए उसने नुएंगी के सातों बेटों का माँ की तरह ही बड़े लाड़ और ममता से पालन-पोषण किया।

अब वे सभी बच्चे युवा हो गए थे। टुईचौंग चाहती थी कि अब ये बच्चे अपने असली माता-पिता के घर चले जाएँ ताकि राजमहल में सुख और आनंद से रहें।

एक दिन टुईचौंग ने उन बच्चों को एक बड़ी सुंदर और मार्मिक कहानी सुनाते हुए बता दिया कि नुएंगी और राजा ही उनके असली माता-पिता हैं। अतः उन्हें अब राजमहल चले जाना चाहिए।

अगले ही दिन वे सातों भाई महल पहुँच गए। वे बड़े सुंदर एवं स्वस्थ थे और राजा भी उन्हें देखकर बड़ा आनंदित हो गया।

जब उन युवकों में से सबसे बड़े भाई ने अपनी कहानी राजा को सुनाई, तो राजा की आँखों में आँसू आ गए। राजा ने बड़ी रानी को दरबार में बुलाकर पूछा, "क्या तुमने वास्तव में नुएंगी के बच्चों को नदी में बहा दिया था?"

राजा का सख्त चेहरा देखकर बड़ी रानी थर-थर काँपने लगी। उसने सब कुछ

सच-सच बता दिया। इस पर राजा ने बड़ी रानी को देश-निकाला दे दिया और नुएंगी को महारानी बना दिया।

अब नुएंगी के सातों बेटे महल में राजकुमारों की तरह रहने लगे। और कुछ ही दिनों में राजा ने सबसे बड़े बेटे को एक भव्य समारोह में युवराज घोषित कर दिया।

अब तो नुएंगी को राजमहिषी का पद मिल गया था। कभी-कभी अकेले बैठे-बैठे नुएंगी सोचती तो अतीत की स्मृतियाँ उसके सामने दौड़ने लगतीं। उसे टुईचौंग की बहुत याद आती थी कि कैसे उसकी बहन ने नदी बनकर न सिर्फ उसकी प्यास बुझाई, बल्कि उसके सात बेटों को भी जीवन-दान दिया।

सोचते-सोचते नुएंगी का मन उदास हो जाता। और उसके होंठों से बरबस ये शब्द निकल पड़ते, "काश!, आज मेरी बहन टुईचौंग होती, तो मेरे इस सुख-वैभवपूर्ण जीवन को देखकर कितनी खुश होती!"

बूढ़े सुजुको की समझदारी (नगालैंड)

नगालैंड के एक गाँव में रहते थे बूढ़े सुजुको दादाजी। वे इतने बुद्धिमान और समझदार थे कि पूरा गाँव उनकी इज्जत करता था। हर कोई उन्हें 'सुजुको दादाजी' कहकर पुकारता था। बूढ़े सुजुको दादा जी की खेती-बाड़ी में बहुत रुचि थी। उनका बेटा बरसों पहले किसी बीमारी की चपेट में आकर गुजर गया था। अब घर में उनके अलावा बस दो ही लोग और थे—एक उनके बेटे की बहू मिन्ती और एक जवान पोता मुकुआ।

उस गाँव के लोग अपना ज्यादातर समय जंगलों में घूमने, जंगली फल और जड़ी-बूटियाँ इकट्ठी करने तथा जंगल में छोटे-छोटे पानी के गड्ढों से मछलियाँ पकड़ने में व्यतीत करते थे। उनकी अपने खेत में खूब मेहनत करके अच्छा अन्न प्राप्त करने में कोई रुचि नहीं थी। खेती करने का काम उन्होंने घर की लड़कियों और महिलाओं पर छोड़ रखा था। पर वे उस काम को अकेले बहुत ही मुश्किल से कर पाती थीं।

कारण यह था कि समय-समय पर खेत की गुड़ाई करना, खरपतवार निकालना, दूर-पास के गड्ढों से पानी भरकर लाना और खेतों को सींचना—ये काफी मुश्किल काम थे। स्त्रियाँ घरेलू कामों की थकान के बाद खेती के काम में जुटतीं, तो इन्हें पूरी तरह नहीं कर पाती थीं। इसलिए फसल कम होती थी और वह सालभर नहीं चलती थी। खाने-पीने की तंगी हर घर में बनी रहती थी, सिवाय बूढ़े सुजुको के घर के।

बूढ़े सुजुको दादाजी की हड्डियों में जान थी और सबसे बड़ी बात तो यह कि वे आलसी नहीं थे। इस उम्र में भी वे हाड़तोड़ मेहनत करते थे। जब भी उनका पोता मुकुआ अपने दोस्तों के साथ जंगल में जाने, वहाँ से जंगली फल और मछलियाँ लाने की बात करता, तो दादाजी उसे बड़े प्यार से पुचकारकर कहते, "बेटा, जंगल में भटकने से कुछ नहीं मिलेगा। तू वहाँ दो-चार मछलियाँ पकड़ लेगा या फिर दो-चार जंगली फल। इसके अलावा तुझे कुछ नहीं मिलेगा। चल न, मेरे साथ चल। दोनों मिलकर खेत से खरपतवार निकालेंगे तो चावल के पौधों को बढ़ने के लिए खूब जगह मिलेगी और फिर भरपूर फसल होगी।"

सुजुको दादाजी अपने पोते के कंधे पर हाथ रखकर ये सारी बातें इतने प्यार से कहते कि मुकुआ मना नहीं कर पाता था। हारकर उसे दादाजी के साथ खेत पर काम करने के लिए जाना ही पड़ता था। उनके खेत में चावल की भरपूर फसल खड़ी थी और चावल के दानों में खूब दूध भरता जा रहा था। यानी फसल पकने पर दाने खूब स्वस्थ होने वाले थे।

एक बार बातों-बातों में बूढ़े दादाजी ने पोते को समझाया, "देखो मुकुआ, अगर हमारे पास चावल की भरपूर फसल होगी तो मछलियाँ और जंगली फल हमें अपने आप मिल जाएँगे, घर बैठे-बैठे। उसके लिए हमें जंगल में नहीं भटकना पड़ेगा।"

मुकुआ को यह बात समझ में नहीं आई थी, पर वह चुप खड़ा था।

इसके कुछ समय बाद की बात है। एक बार मुकुआ का दोस्त बीजू घर पर उसे अपने साथ जंगल में ले चलने के लिए बुलाने आया। दादाजी द्वार के पास ही बैठे थे। उन्होंने मुकुआ के दोस्त से कहा, "बेटा बीजू, मुकुआ तो नहीं जा पाएगा। उसे मेरे साथ खेत पर काम करने जाना है, पर तुम मेरा एक छोटा-सा काम कर देना। वह यह कि जंगल से एक छोटी-सी मछली जिंदा पकड़कर ले आना।"

बीजू ने कहा, "दादाजी, यह तो मेरे लिए मामूली-सा काम है। मैं शाम को जंगल में आते हुए आपके लिए जिंदा मछली जरूर ला दूँगा।"

यह कहकर वह दरवाजे से ही जंगल की ओर चला गया। शाम को जब वह आया तो

दादाजी के पास आकर बोला, "दादाजी, यह लीजिए अपनी जिंदा मछली।" यह कहते हुए उसने दादाजी को मछली दिखाई।

दादाजी ने एक हौदी में पहले से पानी भरकर रखा था। उन्होंने उस मछली को उस पानी से भरी हौदी में डालने के लिए कहा। अब दादाजी ने बीजू से कहा कि वह हौद में से मछली पकड़कर दिखाए। बीजू ने पहले एक हाथ से वह मछली पकड़नी चाही। जब वह नहीं पकड़ी गई तो दोनों हाथों से पकड़ने की कोशिश की। मछली मोटी थी और बहुत तेजी से इधर-उधर हो रही थी। बीजू हक्का-बक्का था। यहीं पर मुकुआ भी कुछ हैरान-सा खड़ा था।

दादाजी मुसकराते हुए यह सारा खेल देख रहे थे। आखिर उन्होंने मुकुआ और बीजू दोनों को समझाते हुए कहा, "देखो, तुम घर के अंदर एक जगह स्थिर रखी हौदी में एक छोटी मछली ही नहीं पकड़ पाए, तो जंगल के पास बहने वाली नदी से यानी बहते पानी से मछलियाँ कैसे पकड़ सकते हो? या ज्यादा से दो-चार ही तो पकड़ पाओगे। बोलो?"

इस पर दोनों दोस्त चुप रहे। उन्हें अहसास हो गया था कि दिनभर भटकने के बाद भी दो-चार मछलियाँ ही पकड़ पाना तो बिल्कुल फिजूल का काम है।

फिर दादाजी अपने पोते मुकुआ को खेत पर ले गए। उसे बड़े प्यार से फसल की खूब अच्छी तरह देखभाल करना सिखाया।

फसल पकने पर उनके घर धान का ढेर लग गया। फसल इतनी ज्यादा थी कि सालभर का खर्च निकालकर भी उनके पास काफी चावल बचे रहते। दूसरे गाँव वालों ने अपने खेतों पर इतना ध्यान नहीं दिया था। अतः उनके खेतों में जो फसल हुई, वह सिर्फ उनके परिवार के गुजारे के लिए ही छह-सात महीने की थी। छह महीने बाद ही गाँव के लोग सुजुको दादाजी के घर चावल लेने के लिए आने लगे। वे रतालू के थैले भरकर लाते, साथ ही मछलियाँ और शहद भी। बदले में वे सुजुको दादाजी से चावल ले जाते थे।

अब तो दादाजी ही नहीं, उनके पोते मुकुआ और उसकी माँ मिन्ती के दिन भी सुख से बीत रहे थे। उनका घर धन-धान्य से भरपूर था। उनकी देखा-देखी गाँव के अन्य लोगों ने भी खेती पर ध्यान देना और कड़ी मेहनत करना शुरू किया। कुछ ही बरसों में पूरा गाँव ही सुख-समृद्धि से भर गया।

अब लोग जब भी इकट्ठे होते तो बूढ़े दादा सुजुको की ही चर्चा करते जिनके कारण पूरा गाँव खुशहाल हो गया था। भले ही अब दादाजी नहीं हैं, पर वे हर गाँव वाले के मन में बसे हुए हैं।

मेरा पहाड़ ऊँचा है (मेघालय)

पुराने समय की बात है। मेघालय में दो हरे-भरे और सुंदर पहाड़ थे, जो बिल्कुल पास-पास थे। उनमें से एक पहाड़ पर एक चिड़िया ने अपना घर बनाया। दूसरे पहाड़ पर दूसरी चिड़िया ने। उनमें से पहली चिड़िया का नाम था रंपा तथा दूसरी चिड़िया का नाम था शंपा।

रंपा और शंपा दोनों चिड़ियाँ अपने-अपने पहाड़ पर बैठकर एक-दूसरे से देर तक बातें करती थीं। दोनों अपने-अपने पहाड़ की खासियतों के बारे में एक-दूसरे को बतातीं। उनकी बातों में इतना रस था कि उन्हें समय का कुछ होश ही नहीं रहता था।

एक दिन की बात, रंपा चिड़िया ने शंपा से कहा, "मेरा पहाड़ तो बहुत ऊँचा है। इतना ऊँचा कि मुझे नहीं लगता, दूर-दूर तक कहीं इतना ऊँचा पहाड़ होगा।"

इस पर शंपा ने कहा, "अरी बुद्धू, तू कैसी बात कह रही है! तूने यही कहा न, कि दूर-दूर तक इतना ऊँचा पहाड़ नहीं होगा? पर पगली, क्या तुझे नहीं पता कि जिस पहाड़ पर मैं बैठी हूँ, वह तो तेरे पहाड़ से कहीं ज्यादा ऊँचा है? बहुत ऊँचा। तेरा पहाड़ तो उसके सामने कुछ भी नहीं है।"

रंपा चिड़िया चिढ़कर बोली, "बहन, तू मेरी मित्र है, इसलिए तेरी इतनी बात मैंने सुन ली। वरना तू जो कह रही है, उसे तो सुनने में भी लज्जा आती है। अरी, जिस पहाड़ पर तू बैठी है, वह तो मुझे लगता है, मेरे वाले पहाड़ से ऊँचाई में आधा भी न होगा। पर तेरा उस पहाड़ के साथ प्रेम है, इसलिए तू उसकी ऊँचाई का कुछ ज्यादा ही बखान कर रही है।"

शंपा ने बुरा-सा मुँह बनाकर कहा, "बहन, तू चाहे कुछ भी कहे, पर सचाई तो यह है कि मेरे पहाड़ के आगे तेरा पहाड़ तो

पहाड़ क्या, बस एक छोटी पहाड़ी ही है। दोनों की कोई तुलना तो खैर हो ही नहीं सकती।"

रंपा चिड़िया को थोड़ा गुस्सा आ गया। बोली, "बहन, मैं बड़ी देर से अपने को शांत रखे हुए हूँ। पर तू बातें ऐसी कर रही है कि सुनते हुए मेरे कान जल रहे हैं। ऐसा लगता है, जैसे मैं अंगारों पर बैठी हूँ।"

"और तू मेरी बात नहीं समझती। मेरे विशाल पहाड़ का लगातार एक सुर में अपमान किए जाती है। इससे क्या तू नहीं जानती कि मुझे अंदर ही अंदर कैसा लग रहा है? मुझे महसूस होता है, जैसे मेरा अंतस जला जा रहा है। तूने मुझे कितनी पीड़ा पहुँचाई है, तू नहीं जानती। बस समझ ले, तेरी कड़वी बातों ने मेरे भीतर आग-सी दहका दी है।" शंपा बोली।

रंपा और शंपा दोनों सहेली चिड़ियाँ थीं और रोजाना आपस में खूब प्रेम से बातें करतीं, तो समय का कुछ पता ही नहीं चलता था। बीच-बीच में कोई-न-कोई ऐसी चुटीली बात भी चल पड़ती कि दोनों मिलकर खूब हँसतीं। और कभी-कभी तो खिल-खिल हँसते हुए दोनों एकदम हँसी की फुलझड़ी बन जातीं। इससे उनका मन ताजा और प्रफुल्लित हो जाता था।

पर आज तो हालत कुछ अलग थी। थोड़ी दूर में ही दोनों के चेहरे एकदम तमतमा गए थे। मुँह फूल गए थे। एक ने इधर मुँह किया, दूसरी ने उधर।

अब हालत यह थी कि दोनों चिड़ियों के लिए एक-एक पल काटना मुश्किल था। दोनों एक-दूसरे से बात करना तो दूर, एक-दूसरे की ओर देखना तक पसंद नहीं करती थीं।

लेकिन पहाड़ का एकांत। दूर-दूर तक नीरवता।...ऐसा कब तक चलता? आखिर दिन मुश्किल से कटा। अगले दिन सुबह फिर उन्होंने धीमे सुर में बात करना शुरू कर दिया। पर इस बार उनके सुर बदले हुए थे। दोनों ऊपर-ऊपर से बातें कर रही थीं, पर उनके चेहरे मलिन थे। चेहरे पर उदासी छिपाए न छिपती थी। वे जान-बूझकर दिखावा करते हुए ऐसी बातें कर रही थीं, जिससे दूसरे का दिल न दुखे और कल की बात और आगे न बढ़े।

आज उनकी बातों में न पहले जैसी हँसी और चुटीलापन था, न वह दिल की अंतरंगता। दोनों चिड़ियाँ रंपा और शंपा इस बात को समझ रही थीं, पर कोई कहना न चाहता था।

तब रंपा ने कहा, "माफ करना बहन, हम दोनों बातें तो कर रहे हैं, पर बातों में वह

रस नहीं आ रहा। मेरे दिल पर बोझ है तो तुम्हारे दिल पर भी! अंदर ही अंदर कोई चीज है जो परेशान कर रही है और वह क्या है, तुझे भी पता है मुझे भी!"

"हाँ, जानती तो मैं भी हूँ, पर क्या करूँ, लाचार हूँ। बात को और बढ़ाना नहीं चाहती। पर हम दोनों को अपनी-अपनी बात पर इतना यकीन है कि इसके अलावा कोई और बात हम सोच ही नहीं सकते। इसलिए कहने को बातें तो हम कर रहे हैं, पर मन अंदर ही अंदर कल की बात याद करके सुलग रहा है!" शंपा कुछ खिन्नता के साथ बोली।

"हाँ बहन, सच्ची कहूँ तो हालत तो मेरी भी यही है।" रंपा चिड़िया ने भी अपने मन की बात बता दी।

"तो हम ऐसा क्यों नहीं करते कि जो बात हमारे मन में है और हमें परेशान कर रही है, उसे किसी तीसरे को बताएँ? फिर उससे कहें कि वह सही न्याय कर दे!" शंपा ने सुझाया।

"तीसरा....! कौन हो सकता है भला जो न्याय करे?" रंपा ने चौंककर कहा।

"खोजें तो क्या नहीं हो सकता!" शंपा बोली।

इतने में उन्हें एक कठफोड़वा तेजी से उड़ता हुआ उन्हें नजर आया। उसे देखते ही रंपा चिड़िया की आँखों में चमक आ गई।

"हम इस कठफोड़वे से कहते हैं।" रंपा ने सुझाया।

"हाँ-हाँ, कहो।" शंपा ने अपनी सहमति जताई।

इस पर रंपा ने बड़े प्यार से आवाज देकर कठफोड़वे को बुलाया और कहा, "सुनो दादा, हम लोग बड़ी मुश्किल में हैं। जरा हमारी मदद करो।"

"कैसी मुश्किल....? बताओ तो जरा!" कठफोड़वे ने ध्यान से दोनों चिड़ियों की ओर देखते हुए कहा।

इस पर रंपा चिड़िया ने जरा इतमीनान से बताया, "असल में दादा, हम दोनों पक्की सहेलियाँ हैं, पर कुछ समय से हममें बड़ी गरमागरम बहस चल रही है। इससे हम दोनों का ही मन खराब हो गया है। मेरा कहना है कि मेरा पहाड़ बहुत ऊँचा है, जबकि मेरी सहेली शंपा चिड़िया का कहना है कि उसका पहाड़ मुझसे ज्यादा ऊँचा है। अभी तक इस बात का फैसला नहीं हो पाया। इससे हम दोनों दुखी हैं। हमें लगता है, कोई तीसरा ही इसका निर्णय कर सकता है। तुम सुंदर और बुद्धिमान हो। फिर तुम्हारे सिर पर राजाओं जैसा ताज भी है। तो हमें लगता है, तुम एकदम सही फैसला करोगे।"

"हाँ-हाँ, पर इसमें मुश्किल क्या है?" कठफोड़वा बोला, "देखो तुम दोनों एक बात समझ लो। जो पहाड़ जितना ऊँचा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लंबी होगी। इसलिए तुम दोनों ऐसा करो कि दोनों पहाड़ों की छायाओं को अलग-अलग नाप लो। बस हो गया फैसला। तुम लोग खुद जान जाओगी कि कौन-सा पहाड़ ज्यादा ऊँचा है।"

बात दोनों चिड़ियों को समझ में आ गई। उन्होंने कठफोड़वा दादा को धन्यवाद दिया और फिर इस सोच-विचार में लग गईं कि दोनों पहाड़ों की छायाएँ कैसे नापी जाएँ।

जल्दी ही इसका भी रास्ता निकल आया। रंपा चिड़िया ने कहा, "सुनो सहेली, कल सुबह हम दोनों मिलकर एक पहाड़ की छाया के साथ-साथ उड़ेंगी। उड़ते-उड़ते जहाँ थकान महसूस होगी, वहाँ पेड़ या घास पर बैठकर सुस्ता लेंगे और फिर अगली उड़ान शुरू करेंगे। इस तरह पता चल जाएगा कि कुल कितनी उड़ानों में हम उस पहाड़ की छाया को लाँघ पाते हैं। इसी तरह अगले दिन दूसरे पहाड़ की छाया पार करेंगे। बस, पता चल जाएगा कि कौन-सी छाया ज्यादा लंबी है।"

"अरे वाह, यह तो निकल आया हल। तुम सचमुच बड़ी बुद्धिमान हो। ...मुझे तो यह सूझा ही नहीं," शंपा ने कहा।

"तो फिर कल से शुरू करें न! तुम सुबह-सुबह मेरे पहाड़ के पास आ जाना। थोड़ी देर बाद जब सूरज तपेगा, हम इसकी छाया की लंबाई नापने साथ-साथ उड़ान भरेंगे," रंपा बोली।

अगले दिन वाकई ऐसा ही हुआ। शंपा चिड़िया अपनी सहेली रंपा के पास पहुँच गई। इधर सूरज ने चिलकना शुरू किया, उधर दोनों सहेली चिड़ियों की उड़ान शुरू हुई। वे उड़ती रहीं, उड़ती रहीं देर तक। थक गईं तो दोनों एक पेड़ पर सुस्ताने बैठीं। देखा, पहाड़ की छाया तो अब भी बहुत लंबी है।

थोड़ी देर में उन्होंने फिर उड़ान शुरू की। इस तरह करते-करते सात उड़ानों में पहाड़ की छाया नाप ली। दोनों बुरी तरह थक गई थीं, पर उनके चेहरे पर संतोष भरी मुसकान थी। दोनों ने एक साथ कहा, "लगता है, जल्दी ही अब हमें सही उत्तर मिल जाएगा।"

अगले दिन दूसरे पहाड़ की छाया को नापने फिर से दोनों चिड़ियाँ इकट्ठी हुईं। सूरज के चिलकने के साथ ही उनकी उड़ान शुरू हुई। उसी तरह उन्होंने पहली उड़ान भरी और जब उड़ते-उड़ते थक गईं तो एक

"अरे, यह तो कमाल हो गया," रंपा चिड़िया ने कहा।

"सचमुच कमाल...बल्कि कमाल नहीं, धमाल!" शंपा ने खुशी से भरकर चह-चह की। फिर वह खुलकर हँसी तो साथ ही रंपा भी खिल-खिल हँस पड़ी। दोनों देर तक खिलखिलाकर हँसती रहीं।

फिर रंपा चिड़िया ने कहा, "हम तो आदमियों के बारे में ही सुना करते थे कि

पेड़ पर सुस्ताने बैठ गईं। फिर थोड़ी देर में दूसरी उड़ान शुरू हो गई।...होते-होते पाँच उड़ानें पूरी हो गईं। पहाड़ की छाया का दूसरा छोर अब भी नजर नहीं आ रहा था।

"कहीं ऐसा तो नहीं कि यही पहाड़ ज्यादा ऊँचा हो?" उन्होंने सोचा। फिर मन में आया, "परेशान होने की बात क्या है। सच्चाई तो अभी थोड़ी देर में सामने आई जाती है।"

फिर छठी उड़ान शुरू हुई और उसकी समाप्ति पर सुस्ताने के बाद दोनों सातवीं उड़ान पर निकलीं। उड़ते-उड़ते वे थकने लगीं और पास में कोई पेड़ खोज रही थीं, तभी दोनों का ध्यान एक साथ गया, "अरे, पहाड़ की छाया तो यहीं खत्म हो गई...!"

"तो इसका मतलब...?" रंपा चिड़िया बोली।

"क्या दोनों पहाड़ों की ऊँचाई समान है...?" शंपा चहकी।

उनकी कितनी ही लड़ाइयाँ और झगड़े फालतू के होते हैं। चाहें तो वे अमन और प्यार से रहकर अपनी जिंदगी कहीं अधिक खुशी से गुजार सकते हैं, पर वे बिना बात लड़ाई-झगड़े में फँसे रहते हैं और अपनी शांति गँवा देते हैं!....पर यही बेवकूफी तो हमने भी की। देखो, जरा-सी बात का कितना बखेड़ा खड़ा कर दिया?"

"चलो, जब अक्ल आए तभी अच्छा है!" शंपा चिड़िया ने मुसकराकर कहा।

फिर दोनों ने खुशी-खुशी उड़ान भरी और फुर्र से यह जा और वह जा। आज उनके चेहरे पर बहुत समय बाद वही खुशी, उल्लास और मस्ती नजर आई, जिसकी वजह से जंगल में दूर-दूर तक उनकी चह-चह, चह-चह गूँजा करती थी।

(राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'पूर्वोत्तर राज्यों की भावपूर्ण लोक कथाएँ')

छत्तीसगढ़ की तालाब लोक संस्कृति

राहुल कुमार सिंह

जन्म : सन् 1958, अकलतरा, छत्तीसगढ़।

संप्रति : रायपुर, राज्य शासन के संस्कृति विभाग में कार्यरत।

- मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ के 500 से अधिक ग्राम-स्थलों का सर्वेक्षण। ताला, डीपाडीह, सिसदेवरी, महेशपुर, कलचा-भदवाही, डमरू, भोंगापाल, गढ़धनोरा जैसे महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक स्थलों की खुदाई।
- पुरातात्त्विक शोध पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, संपादन। लोकप्रिय और चर्चित पुस्तक 'एक थे फूफा' तथा 'सिंहावलोकन' प्रकाशित।
- साहित्यिक-वैचारिक लेखन-प्रकाशन, रेडियो, टेलीविजन पर लगभग नियमित विषय-विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित।

संपर्क : मोबाइल : 9425227484

ई-मेल : rahulsinghcg@gmail.com

छत्तीसगढ़ की सीमावर्ती पहाड़ियाँ उच्चता, प्राकृतिक संसाधनयुक्त रत्नगर्भा धरती संपन्नता, वन-कांतार सघनता का परिचय देती हैं तो मैदानी भाग उदार विस्तार का परिचायक है। इस मैदानी हिस्से की जलराशि में सामुदायिक समन्वित संस्कृति के दर्शन होते हैं, जहाँ जल संसाधन और प्रबंधन की समृद्ध परंपरा के प्रमाण, तालाबों के साथ विद्यमान हैं और इसलिए तालाब स्नान, पेयजल और अपासी (आबपाशी या सिंचाई) आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष पूर्ति के साथ जन-जीवन और समुदाय के वृहत्तर सांस्कृतिक संदर्भयुक्त बिंदु हैं।

अहिमन रानी और रेवा रानी की गाथा तालाब स्नान से आरंभ होती है। नौ लाख ओड़िया, नौ लाख ओड़निन के उल्लेख सहित दसमत कइना की गाथा में तालाब खुदता है और फुलबासन की गाथा में मायावी तालाब है। एक लाख मवेशियों का कारवाँ लेकर चलने वाला लाखा बंजारा और नायकों के स्वामिभक्त कुत्ते का कुकुरदेव मंदिर सहित उनके खुदवाए तालाब, लोक स्मृति में खपरी, दुर्ग, मंदिर हसौद, पांडुका के पास, रतनपुर के पास करमा-बसहा, बलौदा के पास महुदा जैसे स्थानों में जीवंत हैं। गाया जाता है—'राम कोड़ावय ताल सगुरिया, लछिमन बंधवाय पार।' खमरछठ (हल-षष्ठी) की पूजा में प्रतीकात्मक तालाब रचना और संबंधित कथा में तथा बस्तर के लछमी जगार गाथा में तालाब खुदवाने संबंधी पारंपरिक मान्यता और सुदीर्घ परंपरा का संकेत है। रतनपुर का घी-कुड़िया तालाब राजा मोरध्वज के अश्वमेध यज्ञ आयोजन में घी से भरा गया था, माना जाता है। सरगुजा अंचल में कथा चलती है कि पछिमहा देव ने सात सौ तालाब खुदवाए थे और राजा बालंद, कर के रूप में खीना लोहा वसूलता और जोड़ा तालाब खुदवाता, जहाँ-जहाँ रात बासा, वहीं तालाब। उक्ति है—"सात सौ फौज, जोड़ा तलवा; अइसन रहे बालंद रजवा।" विशेषकर

पटना (कोरिया) में कहा जाता है—'सातए कोरी, सातए आगर। तेकर ऊपर बूढ़ा सागर।'

तालाबों की बहुलता इतनी कि 'छै आगर छै कोरी', यानी 126 तालाबों की मान्यता रतनपुर, मल्हार, खरौद, महंत, नवागढ़, अड़भार, आरंग, धमधा जैसे कई गाँवों के साथ संबद्ध है। सरगुजा के महेशपुर और पटना में तथा बस्तर अंचल के बारसूर, बड़े डोंगर, कुरुसपाल और बस्तर आदि ग्रामों में 'सात आगर सात कोरी'- 147 तालाबों की मान्यता है। इन गाँवों में आज भी बड़ी संख्या में तालाब विद्यमान हैं। 'लखनपुर में लाख पोखरा' यानी सरगुजा की लखनपुर जमींदारी में लाख तालाब कहे जाते थे, अब यह गिनती 360 तक पहुँचती है। छत्तीसगढ़ में 36 से अधिक संख्या में परिखा युक्त मृत्तिका-दुर्ग यानी मिट्‌टी के किले या गढ़ जांजगीर-चांपा जिले में ही हैं। इन गढ़ों का सामरिक उपयोग संदिग्ध है किंतु गढ़ों के साथ खाई, जल संसाधन की दृष्टि से आज भी उपयोगी है। रायपुर और सारंगढ़ के शृंखलाबद्ध तालाब और उनकी आपसी संबद्धता के अवशेष स्मृति में और मौके पर अब भी विद्यमान हैं।

"तालाबों के प्रबंधक अघोषित-अलिखित लेकिन होते निश्चित हैं, जो सुबह पहले-पहल तालाब पहुँचकर घटते-बढ़ते जल-स्तर के अनुसार घाट-घठौंदा के पत्थरों को खिसकाते हैं, घाट की काई साफ करते हैं, दातौन की बिखरी चिरी को इकट्ठा कर हटाते हैं और इस्तेमाल के इस सामुदायिक केंद्र के औघट (पैठू की दिशा में प्रक्षालन के लिए स्थान) आदि का अनुशासन कायम रखते हैं।"

भीमादेव, बस्तर में पाण्डव नहीं, बल्कि पानी-कृषि के देवता हैं। जांजगीर और घिवरा ग्राम में भी 'भीमा' नामक तालाब हैं। बस्तर में विवाह के कई नेग-चार पानी और तालाब से जुड़े हैं। कांकेर क्षेत्र में विवाह के अवसर पर वर-कन्या तालाब के सात भाँवर घूमते हैं और परिवारजन सातों बार हल्दी चढ़ाते हैं। दूल्हा अपनी नवविवाहिता को पीठ पर लाद कर स्नान कराने जलाशय भी ले जाता है और पीठ पर लाद कर ही लौटता है। यह रोचक है कि आमतौर पर समाज से दूरी बनाए रखने वाले नायक, सबरिया, लोनिया, मटकुड़ा, मटकुली, बेलदार और रामनामियों की भूमिका तालाब निर्माण में महत्त्वपूर्ण होती है और उनकी विशेषज्ञता तो काल प्रमाणित है ही। छत्तीसगढ़ में पड़े भीषण अकाल के समय किसी अंग्रेज अधिकारी, संभवतः एग्रीकल्चर एंड हॉर्टिकल्चर सोसायटी ऑफ इंडिया के 19वीं सदी के अंत में सचिव रहे जे. लेंकेस्टर की पहल पर खुदवाए गए उसके नाम स्मारक बहुसंख्य 'लंकेटर तालाब' अब भी जल आवश्यकता की पूर्ति और राहत कार्य के संदर्भ सहित विद्यमान हैं।

छत्तीसगढ़ में तालाबों के विवाह की परंपरा भी है, जिस अनुष्ठान (लोकार्पण का एक स्वरूप) के बाद ही उसका सार्वजनिक उपयोग आरंभ होता था। विवाहित तालाब की पहचान सामान्यतः तालाब के बीच स्थित स्तंभ से होती है। लकड़ी के इन स्तंभों का स्थान अब सीमेंट लेने लगा है और सक्ती के महामाया तालाब में उल्लेखनीय लोहे का स्तंभ स्थापित है, स्तंभ से घटते-बढ़ते जल-स्तर की माप भी हो जाती है। किरारी, जांजगीर के हीराबंध तालाब से प्राप्त स्तंभ पर खुदे अक्षरों के आधार पर यह दो हजार साल पुराना प्रमाणित है। इस प्राचीनतम काष्ठ उत्कीर्ण लेख से तत्कालीन राज पदाधिकारियों की जानकारी मिलती है। कुछ तालाब अविवाहित भी रह जाते हैं, लेकिन चिंत्य या पीढ़ी पूजा के लिए ऐसे तालाब का ही जल उपयोग में आता है।

तालाबों के स्थापत्य में कम-से-कम मछंदर (पानी के सोते वाला तालाब का सबसे गहरा भाग), नक्खा या छलका (लबालब होने पर पानी निकलने का मार्ग), गांसा (तालाब का सबसे गहरा किनारा), पैठू (तालाब के बाहर अतिरिक्त पानी जमा होने का स्थान), पुंछा (पानी आने व निकासी का रास्ता) और मेढ़-पार होता है। तालाबों के प्रबंधक अघोषित-अलिखित लेकिन होते निश्चित हैं, जो सुबह पहले-पहल तालाब पहुँचकर घटते-बढ़ते जल-स्तर के अनुसार घाट-घठौंदा के पत्थरों को खिसकाते हैं, घाट की काई साफ करते हैं, दातौन की बिखरी चिरी को इकट्ठा कर हटाते हैं और इस्तेमाल के इस सामुदायिक केंद्र के औघट (पैठू की दिशा में प्रक्षालन के लिए स्थान) आदि का अनुशासन कायम रखते हैं। घाट, सामान्यतः पुरुषों, महिलाओं के लिए अलग-अलग, धोबी घाट, मवेशी घाट (अब छठ घाट) और मरघट होता है। तालाबों के पारंपरिक प्रबंधक ही अधिकतर दाह-संस्कार में चिता की लकड़ी जमाने से लेकर शव के ठीक से जल जाने और अस्थि-संचय करा कर, उस स्थान की शांति-गोबर से लिपाई तक की निगरानी करते हुए सहयोग देता है और घंटहा पीपर (दाह-क्रिया के बाद जिस पीपल के वृक्ष पर घट-पात्र बाँधा जाता है) के बने रहने और आवश्यकता होने पर इस प्रयोजन के वृक्ष-रोपण की व्यवस्था भी वही करता है। अधिकतर ऐसे व्यक्ति मान्य उच्च वर्णों के होते हैं।

तालाबों का नामकरण सामान्यतः उसके आकार, उपयोग और विशिष्टता पर होता है, जैसे—पनपिया या पनखत्ती, निस्तारी और अपासी (आबपाशी) और खइया, नइया, पंवसरा, पंवसरी, गधियाही, सोलाही या सोलहा, पचरिहा, सतखंडा, अड़बंधा, छुइखदान, डोंगिया, गोबरहा, खदुअन, पुरेनहा, देउरहा, नवा तालाब, पथर्रा, टेढ़ी, कारी, पर्री, दर्री, नंगसगरा, बघबुड़ा, गिधवा, केंवासी (केंवाची)। बरात निकासी, आगमन व पड़ाव से संबद्ध तालाब का नाम 'दुलहरा' पड़ जाता है। तालाब नामकरण उसके चरित्र-इतिहास और व्यक्ति नाम पर भी आधारित होता है, जैसे—फुटहा, दोखही, भुतही, करबिन, काना भैरा, छुइहा, टोनही डबरी, सोनईताल, फूलसागर, मोतीसागर,

रानीसागर, राजा तालाब, रजबंधा, गोपिया आदि। जोड़ा नाम भी होते हैं, जैसे—भीमा-कीचक, सास-बहू, मामा-भांजा, सोनई-रूपई। 'पानी-पोखर' दिनचर्या का तो 'तलाव उछाल' जीवन-मरण का शब्द है।

पानी और तालाब से संबंधित ग्राम-नामों की लंबी सूची हैं और उद, उदा, दा, सर (सरी भी), सरा, तरा (तरी भी), तराई, ताल, चुआँ, बोड़, नार, मुड़ा, पानी आदि जलराशि-तालाब के समानार्थी शब्दों के मेल से बने हैं। उद, उदा, दा जुड़कर बने ग्राम नाम के कुछ उदाहरण बछौद, हसौद, तनौद, मरौद, रहौद, लाहौद, चरौदा, कोहरौदा, बलौदा, मालखरौदा, चिखलदा, बिठलदा, रिस्दा, परसदा, फरहदा हैं। सर, सरा, सरी, तरा, तरी, के मेल से बने ग्राम नाम के उदाहरण बेलसर, भड़ेसर, लाखासर, खोंगसरा, अकलसरा, तेलसरा, बोड़सरा, सोनसरी, बेमेतरा, बेलतरा, सिलतरा, भैंसतरा, अकलतरा, अकलतरी, धमतरी है। तरई या तराई तथा ताल के साथ ग्राम नामों की भी बहुलता है। कुछ नमूने डूमरतराई, शिवतराई, जोरातराई, पांडातराई, बीजातराई, सेमरताल, उड़नताल, सरिसताल, अमरताल हैं। चुआँ, बोड़ और सीधे पानी से जुड़कर बने गाँवों के नाम बेंदरचुआँ, घुँईचुआँ, बेहरचुआँ, जामचुआँ, लाटाबोड़, नरइबोड़, घघराबोड़, कुकराबोड़, खोंगापानी, औंरापानी, छीरपानी, जूनापानी जैसे ढेरों उदाहरण हैं। स्थानों का नाम सागर, डबरा तथा बाँधा आदि से मिल कर भी बनता है तो जलराशि सूचक बंद के मेल से बने कुछ ग्राम नाम ओटेबंद, उदेबंद, कन्हाइबंद, हाड़ाबंद, बिल्लीबंद जैसे हैं। ऐसा ही एक नाम अब रायपुर का मुहल्ला टाटीबंद है। वैसे टाटा और टाटी ग्राम नाम भी छत्तीसगढ़ में हैं, जिसका अर्थ छिछला तालाब जान पड़ता है।

कार्तिक स्नान, ग्रहण स्नान, भोजली, मृतक संस्कार के साथ नहावन और पितृ पक्ष की मातृका नवमी के स्नान-अनुष्ठान, ग्राम देवताओं की बीदर पूजा, अक्षय तृतीया पर बाउग (बीज बोना) और विसर्जन आदि के अलावा पानी कम हो जाने पर मतावल, तालाब से संबद्ध विशेष अवसर हैं। सावन अमावस्या पर हरेली की गेंड़ी, भाद्रपद अमावस्या पर पोरा के दिन, तालाब का तीन चक्कर लगाकर पउवा (पायदान) विसर्जन और चर्मरोग निदान के लिए तालाब-विशेष में स्नान, लोक विधान है। विसर्जित सामग्री के समान मात्रा की लद्दी (गाद) तालाब से निकालना पारंपरिक कर्तव्य माना जाता है। ग्रामवासियों द्वारा मिल-जुल कर, गाँवजल्ला लद्दी निकालने के लिए गाँसा काट कर तालाब खाली कर लिया जाता है। बरसात में, नदी-नाले का पुराना छूटा प्रवाह मार्ग-सरार, तालाब बन जाता है। गर्मियों में पानी सूख जाने पर तालाब में पानी जमा करने के लिए छोटा गड्ढा झिरिया बना कर पझरा (पसीजे हुए) पानी से आवश्यकता पूर्ति होती है। खातू (खाद) पालने के लिए सूखे तालाब का राब और काँपू मिट्टी निकालने की होड़ लग जाती है।

तालाब की सत्ता, उसके पारिस्थितिकी तंत्र के बिना अधूरी है जिसमें जलीय वनस्पति-गधिया, चीला, रतालू (कुमुदनी), खोखमा, उरई, कुस, खस, पसहर, पोखरा (कमल), पिकी, जलमोंगरा, ढेंस काँदा, कुकरी काँदा, सरपत, करमता, सुनसुनिया, कुथुआ, जलीय जंतु सीप-घोंघा, जोंक, संधिपाद, चिड़िया (ऐरी), उभयचर आदि और कभी-कभार ऊद व मगर भी होते हैं। मछलियों के ये नाम छत्तीसगढ़ में सहज ज्ञात हैं—डंडवा, घंसरा, अइछा, सोढ़िहा या सोंढ़ुल, लुदू, बंजू, भाकुर, पढ़िना, भेंड़ो, बामी, काराझिंया, खोखसी या खेकसी, झोरी, सलाँगी या सराँगी, डुडुंग, डंडवा, ढेंसरा, बिजरवा, खेगदा, रुदवा, तेलपिया, ग्रासकाल। तालाब जिनकी दिनचर्या का हिस्सा हैं, उनकी जबान पर कटरंग, सिंघी, लुडुवा, कोकिया, रेछा, कोतरी, खेंसरा, गिनवा, टेंगना, मोहराली, सिंगार, पढ़िना, भुंडी, साँवल, बोलिया या लपची, केउ या रुखचग्घा, केवई, मोंगरी, पथर्री, चदैनी, कटही, भेर्री, कतला, रोहू और मिरकल मछलियों के नाम भी सहज आते हैं।

जलीय जंतुओं को देवतुल्य सम्मान देते हुए सोने की नथ पहनी मछली और लिमान (कछुआ) का तथ्य एवं उससे संबद्ध विभिन्न मान्यताएँ रायपुर के निकट ग्राम सरोना और कोटगढ़-अकलतरा के सतखंडा तालाब जैसे उदाहरणों में उसकी पारिस्थितिकी, सत्ता की पवित्रता और निरंतरता की रक्षा करती हैं। इसी तरह 'तरिया गोसांइन' और 'अंगारमोती' जैसे ग्राम देवता खास तालाबों के देवता हैं, जो ग्राम की जल आवश्यकता की पूर्ति का ध्यान रखते है, जिन तालाबों में ऐसे देवता का वास हो, उनका जल शौच के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाता, कोई अनजाने में ऐसा कर बैठे तो देवता उसे माफ तो करता है, लेकिन सचेत करते हुए आभास करा देता है कि भविष्य में भूल न हो, और फिर भी तालाब के पारंपरिक नियमों की उपेक्षा या लापरवाही हो तो सजा मिलती है।

सामुदायिक-सहकारी कृषि का क्षेत्र—बरछा, कुसियार (गन्ना) और साग-सब्जी की पैदावार के लिए नियत तालाब से लगी भूमि, पारंपरिक फसल चक्र परिवर्तन और समृद्ध-स्वावलंबी ग्राम की पहचान माना जा सकता है। बंधिया में अपाशी के लिए पानी रोका जाता है और सूख जाने पर उसका उपयोग चना, अलसी, मसूर, करायर उपजाने के लिए कर लिया जाता है। आम के पेड़ों की अमरइया, स्नान के बाद जल अर्पित करने के लिए शिवलिंग, देवी का स्थान-माताचौंरा या महामाया और शीतला या नीम के पेड़, अन्य वृक्षों में वट, पीपल (घंटहा पीपर) और आम के पेड़ों की अमरइया भी प्रमुख तालाबों के अभिन्न अंग हैं। झिथरी, मिरचुक, तिरसाला, डोंगा, पारस-पत्थर, हंडा-गंगार, पूरी बरात तालाब में डूब जाना जैसी मान्यता, तालाब के चरित्र को रहस्यमय और अलौकिक बनाती है तो पत्थर की पचरी, मामा-भांजा की कथा, राहगीरों के उपयोग के लिए तालाब से बरतन निकलना और भैंसे के सींग में जलीय वनस्पति-चीला अटक जाने से किसी प्राचीन निर्मित या प्राकृतिक तालाब के पता लगने का विश्वास, जन-सामान्य के इतिहास-जिज्ञासा की पूर्ति करता है।

तालाब पर कुछ और बातें

18 मई, 1790 को अंग्रेज यात्री जी.एफ. लेकी रायपुर पहुँचा था। उसने यहाँ के विशाल, चारों ओर से पक्के बने तालाब (संभवतः खो-खो तालाब या आमा तालाब) का जिक्र करते हुए लिखा है कि तालाब का पानी खराब था। 'नागपुर डिवीजन का बस्ता', दस्तावेजों में रायपुर और रतनपुर के तालाबों का महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। प्रसिद्ध यात्री बाबू साधुचरण प्रसाद, अब जिनका नाम शायद ही कोई लेता है, 1893 में छत्तीसगढ़ आए थे। उन्होंने रायपुर के कंकाली तालाब, बूढ़ा तालाब, महाराज तालाब, अंबातालाब, तेलीबाँध, राजा तालाब और कोको तालाब का उल्लेख किया है। इसी प्रकार पं. लालाराम तिवारी और श्री बैजनाथ प्रसाद स्वर्णकार की रचना 'रतनपुर महात्म्य' में भी रतनपुर के तालाबों का रोचक उल्लेख है।

सन् 1900 में पूरा छत्तीसगढ़ अकाल के चपेट में था। इसी साल रायपुर जिले के एक हजार से भी अधिक तालाबों को राहत कार्य के तहत दुरुस्त कराया गया। रायपुर के पास स्थित ग्राम गिरोद में ऐसी सूचना वाला उत्कीर्ण शिलालेख सुरक्षित है। छत्तीसगढ़ की प्रथम हिंदी मासिक पत्रिका 'छत्तीसगढ़ मित्र' के सन् 1900 के मार्च-अप्रैल अंक का उद्धरण है—"रायपुर का आमा तालाब प्रसिद्ध है। यह तालाब श्रीयुत सोभाराम साव रायपुर निवासी के पूर्वजों ने बनवाया था। अब उसका पानी सूख कर खराब हो गया है। सावजी ने उसकी मरम्मत में 17,000 रुपये खर्च करने का निश्चय किया है। काम भी जोर-शोर से जारी हो गया है। आपका औदार्य इस प्रदेश में चिरकाल से प्रसिद्ध है। सरकार को चाहिए कि इसकी ओर ध्यान देवे।"

शुकलाल प्रसाद पांडे की कविता 'तल्लाव के पानी' की पंक्तियाँ हैं—

"गनती गनही तब तो इहां ल छय सात तरैया हे,
फेर ओ सब माँ बँधवा तरिया पानी एक पुरैया हे।
न्हावन छींचन भइंसा-माँजन, धोये ओढ़न चेंदरा के।
ते मा धोबनिन मन के मारे गत नइये ओ बपुरा के।।
पानी नीचट धोंघट धोंघा, मिले रबोदा जे मा हे।
पंडरा रंग, गैंधाइन महके, अउ धराउल ठोम्हा हे।
कम्हू जम्हू के साग अमटहा, झोरहातै लगबे राँधे,
तुरत गढ़ा जाही रे भाई रंहन बेसन नई लागे।"

तालाबों के विवाह की परंपरा के साथ स्मरणीय है कि इस तरह का विवाह अनुष्ठान फलदार वृक्षों के लिए भी होता है, जिसके बाद विवाहित वृक्ष के फल का उपयोग आरंभ किया जाता है। तालाबों का विवाह, अवर्षा की स्थिति होने पर या जल स्रोतों को सक्रिय करने के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान है। तालाबों के कुँवारे रह जाने की तरह एक उदाहरण जिला मुख्यालय धमतरी के पास करेठा का है, जहाँ के ग्राम देवी-देवता अविवाहित माने जाते हैं, इस गाँव को 'कुँआरीडीह' भी कहा जाता है। बहरहाल, सन् 2011 में 12-13 जून को जांजगीर-चांपा जिले के केरा ग्रामवासियों द्वारा राजापारा के रनसगरा तालाब का विवाह विधि-विधानपूर्वक कराया गया, जिसमें वर, भगवान वरुण और वरुणीदेवी को वधू विराजित कराया गया। इस मौके पर लोगों ने 80 साल पहले गाँव के ही 'बर तालाब' के विवाह आयोजन को भी याद किया।

तालाब, उनसे जुड़ी मान्यताएँ और एक-एक शब्द के साथ पूरी कथा है, नमूने के लिए 'मामा-भांजा', 'सागर' और 'सरगबुंदिया'। तालाब के 'मामा-भांजा' नामकरण का कारण बताया जाता है कि किसी भांजे ने अपने नाम से तालाब खुदवाने के लिए अपने मामा को विश्वासपूर्वक जिम्मा दिया था, मामा ने साथ-साथ अपने नाम से भी एक तालाब खुदवा लेने के लिए भांजे का सहयोग चाहा, भांजे ने इसके लिए हामी भरी, तब मामा ने छलपूर्वक तालाब खुदवाने के लिए निचले हिस्से में, जहाँ पानी की अधिक संभावना थी, अपने नाम से और भांजे के लिए उथले स्थान का निर्धारण कर लिया। मौके पर पहुँचने से भांजे को स्थिति का पता लगा, उसने इसे नियति मानकर स्वीकार कर लिया, लेकिन काम पूरा होने के बाद ऊँचाई पर खुदे 'भांजा' तालाब में लबालब पानी भरा, लेकिन निचले हिस्से का 'मामा' तालाब सूखा रह गया, क्योंकि इसमें कोई प्राकृतिक जल स्रोत नहीं था। बिलासपुर के मामा-भांजा तालाब जोड़े के भांजा तालाब पर अब आबादी बस गई है और मामा तालाब को ही 'मामा-भांजा तालाब' कहा जाने लगा है, जिसमें आस-पास के घरों के निकास का गंदा पानी जमा होता है। साथ ही खल्लारी, महासमुंद के पास एक गाँव का नाम ही मामा-भांजा है। इस गाँव के एक छोर

पर अंगारमोती देवता वाला गधिया तरिया है, जिसके पास देवता मामा-भांजा की मान्यता वाला उकेरा जोड़ा-पत्थर है। बताया जाता है कि भूलवश मामा का बाण लग जाने से भांजे की मौत हो गई, ग्लानिवश मामा ने भी अपनी इहलीला समाप्त कर ली, वही मामा-भांजा देवता हुए, अब पूजित हैं।

सागर, नरियरा ग्राम का विशाल तालाब है। इस तालाब में पारस पत्थर होने का किस्सा बताया जाता है—एक बरेठिन सागर तालाब में नहाने गई, वहाँ पैर के आभूषण, पैरी को दुरुस्त करने की जरूरत हुई, उसने घाट पर पड़ा पत्थर ले कर ठोंक-पीट किया और वापस घर आ गई। घर में ध्यान गया कि उस पैरी में सुनहरी चमक है। पूछताछ होने लगी। बरेठिन को तालाब वाली बात याद आई और यह बताते ही खबर जंगल की आग की तरह पूरे इलाके में फैल गई कि नरियरा के सागर तालाब में पारस पत्थर है, खोज होने लगी, लेकिन सब बेकार। बात अंग्रेज सरकार तक पहुँची। कुछ ही दिनों में अंग्रेज अधिकारी नरियरा आए, उनके साथ दो हाथी और तालाब की लंबाई की लोहे की जंजीर थी। हाथियों के पैर में जंजीर बाँधी गई और दोनों हाथियों को तालाब के आर-पार जंजीर को डुबाते हुए, तालाब की परिक्रमा कराई गई। जंजीर बाहर आई तो उसकी ढाई कड़ी सोने की थी, लेकिन इसके बाद भी उस पारस पत्थर को नहीं मिलना था तो वह नहीं मिला और अब भी यह आस-विश्वास बना हुआ है। वैसे इस तालाब आबपाशी से खेतों से धान और बरछा से गन्ना, सब्जियाँ सोना ही उगलती हैं। पारस पत्थर की इससे मिलती-जुलती कहानी सिरपुर के रायकेरा तालाब के साथ भी जुड़ी है।

पलारी का बालसमुंद देखकर, उसके नामकरण का स्वाभाविक अनुमान होता है कि तालाब का विशाल आकार इसका कारण है। लेकिन यहाँ एक रोचक किस्सा है कि इसे नायक सरदार ने छैमासी रात में शोध-विचार कर खुदवाया, परंतु तालाब सूखा का सूखा रहा। नायक सरदार ने जानकारों से राय ली और उनके बताए अनुसार लोक मंगल की कामना करते अपने नवजात शिशु को सूखे खुदे तालाब में परात में रख कर छोड़ दिया। देखते-ही-देखते रात बीतने में तालाब लबालब हो गया और नवजात परात सहित पानी पर उतराने लगा। इसी वजह से तालाब का नाम 'बालसमुंद' हुआ। प्रसंगवश, जल स्रोत और उसके लोकोपयोग से जुड़ा एक वास्तविक प्रसंग है, बिलासपुर जिले के गनियारी का। इस गाँव में पीने के पानी की कमी को देखकर गाँव के प्रमुख दिघ्रस्कर-शास्त्री परिवार ने कुआँ खुदवाया, इसी दौरान गाँव की चर्चा उनके कान में पड़ी कि यह कुआँ तो वे अपने लिए खुदवा रहे हैं और यश पाना चाह रहे हैं कि जन-कल्याण का काम कर रहे हैं। जिस दिन कुएँ का पूजन-लोकार्पण हुआ, परिवार प्रमुख ने घोषणा कर दी कि अब वे इस कुएँ का क्या, इस गाँव का भी पानी नहीं पिएँगे, और दिघ्रस्कर परिवार के लोग आज भी गनियारी जाते हुए पीने का पानी अपने साथ ले जाते हैं।

अब सरगबुँदिया, यानी? मतलब एकदम साफ है, सरगबुँदिया, सरग=स्वर्ग और बुँदिया=बूँदें, यानी स्वर्ग की बूँदें, अमृतोपम जल, ऐसा तालाब जिसका पानी साफ, मीठा हो। भाषाशास्त्र में हाथ आजमाते और तालाबों की खोज-खबर लेते यह मेरे लिए मुश्किल नहीं रह गया है। तालाबों की बात करते हुए अब मैं लोगों को अपनी इस स्थापना को मौका बना कर सगर्व बताता, सरगबुँदिया यानी पनपिया यानी जिस तालाब का पानी पीने के लिए उपयोग होता है। एक दिन मेरी बातें सुनकर किसी बुजुर्ग ने धीरे से बात संभाली और मुझे बिना महसूस कराए सुधारा कि सरगबुँदिया में पानी का कोई सोता नहीं है, न भराव-ठहराव न रसन-आवक, बस स्वर्ग की बूँदों, बरसात के भरोसे है।

बिज्जी का लोक संसार और रुपहला पर्दा

विजयदान देथा का जन्म एक सितंबर, 1926 को बोरुंदा राजस्थान में हुआ। उन्हें 'बिज्जी' के नाम से भी जाना जाता था। बिज्जी राजस्थान के विख्यात लेखक और पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित व्यक्ति थे। उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार और साहित्य चुड़ामणी पुरस्कार जैसे विभिन्न अन्य पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। 10 नवंबर, 2013 को 87 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया।

बिज्जी ने 800 से अधिक लघु कथाओं का लेखन किया, जिनका अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया। कोमल कोठारी के साथ, उन्होंने रूपायन संस्थान की स्थापना की, जो राजस्थानी लोक गीत, कला और संगीत का दस्तावेजीकरण करता है। उनकी साहित्यिक कृतियों में 'बट्टन री फुलवारी' (कहानियों का बगीचा), 14 खंडों की कहानियों का संग्रह है जो राजस्थान की बोलियों में लोक कथाओं पर आधारित है। उनकी कई कहानियों और उपन्यासों को मंच और सिनेमा के लिए अनुकूलित किया गया है। इनमें शामिल हैं–हबीब तनवीर की 'चरणदास चोर', प्रकाश झा की 'परिणीति', अमोल पालेकर की 'पहाड़ी', और मणि कौल की 'दुविधा'।

रमेश कुमार सिंह

जन्म : एक जनवरी, 1969

शिक्षा : बी.ए., बी.टी.सी.।

संप्रति : अध्यापन।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी से वार्ताएँ, बाल रचनाएँ, रेडियो नाटक, आकाशवाणी के लिए विभिन्न साक्षात्कार, भोजपुरी सिनेमा के बारे में साक्षात्कार प्रकाशित।

सम्मान : कहानियों के लिए हिंदी अकादमी से पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल : 9810518717

लोक कथाएँ लोक मन की गहराई में उतरती हैं। बचपन में सुनी गई लोक कथाओं का जीवनभर अमिट प्रभाव रहता है। शायद इसी कारण हम लोक कथाओं पर आधारित साहित्य को अधिक पसंद करते हैं और इसे रचने वाले साहित्यकारों को भी। राजस्थान की लोक कथाओं को विश्व प्रसिद्ध कर देने वाले बिज्जी यानी विजयदान देथा भी इसी कारण हमारे युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकारों में से एक हैं। लोक जीवन के, लोक मन के अद्भुत चितेरे थे बिज्जी।

बिज्जी ने लोक से जितना लिया, उसका कई गुना साहित्य के रूप में उसे लौटाया। लोक ने सूत्र दिया, बिज्जी ने उसकी व्याख्या की। उन्होंने बीज ग्रहण किया, फिर कल्पना और रचनात्मकता की खाद-पानी-धूप-हवा देकर, अपने श्रम और प्रतिभा से उसे लहलहाती फसल में बदल दिया। तुम्हारी दी हुई वस्तु तुम्हें ही समर्पित!

बिज्जी ने लोकल को ग्लोबल बनाने की उक्ति को चरितार्थ किया है। वे सूक्ष्मदर्शी हैं। उनकी जौहरी आँखों ने लोक के अनमोल खजाने को पहचाना। उनमें अनगढ़ को गढ़ने की, हीरे को तराशने की अपार शक्ति है। उनका मन कहानी के भीतर की कहानी को पकड़ने में माहिर है। उनकी कलम ने उसी कहानी वाणी दी, उड़ान के लिए पंख दिए। बिज्जी ने मौलिक लेखन भी किया। किंतु उन्होंने जिन लोक कथाओं का संधान, पुनर्सृजन और पुनःसंस्कार किया, आलोचक उन्हें भी उनके मौलिक लेखन की तरह श्रेष्ठ मानते हैं। बिज्जी की भाषा में अनोखी रवानी है। वह बहता हुआ पानी है। नहाओ, डुबकी लगाओ, आचमन कर लो। बिज्जी को पाठकों से अपूर्व प्यार मिला। उन्होंने लोक कथाओं का जो उपहार दिया, लोक ने उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया।

बिज्जी एक धुरंधर लेखक ही नहीं, ग़जब के पढ़ाकू भी थे। लोक मानस के सूक्ष्म

अध्ययन के साथ ही उन्होंने विश्व साहित्य का मनन भी किया था। लोक साहित्य के इस साधक को विश्व साहित्य से प्रेम था। रूसी लेखक चेखव उनके उतने ही प्रिय लेखक थे, जितने शरतचंद्र और टैगोर। आज बिज्जी का साहित्य भी विश्व साहित्य की थाती बन गया है।

बिज्जी में सामंतवादी मानसिकता के खोखलेपन को उजागर करने का साहस था। उनमें लोक में फैले अहम के अनेकानेक हिटलरों, नए समाज के पूँजीवादी हिटलरों को पहचानने की क्षमता थी। समाज में व्याप्त गहरी विषमता, भेदभाव, शोषण और दमन को देखकर बिज्जी विचलित हो जाते थे, बौखला जाते थे। जो कमजोर है और जिसे ताकतवर कमजोर बना रहे हैं, जो दबा-कुचला है, जिसे शोषकों ने दबाया-कुचला है, उसके प्रति बिज्जी के मन में सहज सहानुभूति थी। क्या बिज्जी यहाँ स्वयं दूजो कबीर नहीं हैं? वे प्रारंभ से ही साहित्य में चारण-संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध रहे। आनन-फानन में श्रद्धांजलि-आदरांजलि करने वालों के खिलाफ लेखनी की लट्ठ लेकर खड़े हैं बिज्जी। अपनी विवादास्पद किताब 'गाँधी के तीन हत्यारे' में वे नवोदित आलोचक के रूप में दिग्गज साहित्यकारों से भिड़ गए थे।

> **"जैसे महात्मा गाँधी को नोबेल पुरस्कार के लिए न चुनना, नोबेल पुरस्कार समिति की चूक मानी जाती है, वैसे ही 2011 में साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए नामित बिज्जी को यह पुरस्कार न मिलना साहित्य का एक दुर्भाग्य ही माना जाएगा। गाँधी को शांति का नोबेल मिलता तो यह पुरस्कार धन्य होता। बिज्जी को अगर मिलता तो इस पुरस्कार की गरिमा बढ़ती। आश्चर्य है कि भारतीय ज्ञानपीठ भी यह गरिमा पाने से चूक गई।"**

लेखन की शुरुआत बिज्जी ने हिंदी में की थी। लेकिन शीघ्र ही बिज्जी ने यह संकल्प कर लिया कि अब जो भी करना है, अपनी मातृभाषा राजस्थानी में ही करना है। यही भावना कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर में भी थी। रवींद्र ने शांतिनिकेतन में गए बलराज साहनी को भी यह संदेश दिया था कि जो भी लिखो, अपनी मातृभाषा में लिखो।

फिर तो बिज्जी के पास जैसे कोई जादुई कलम आ गई, वे अपनी करामाती किस्सागोई से पाठकों को मंत्रमुग्ध करते, बहाते चले गए। वे मंत्रमुग्ध बच्चों को कहानी सुना रहे किसी दादाजी या नानाजी की तरह लगते हैं। बिज्जी की लोक में आस्था अडिग है, बेजोड़ है। उनका खोजी मन लोक कथाओं, कहावतों का सार ग्रहण करता है और फिर उसे विस्तार देता है। बिज्जी कथा के चरित्रों की परतें खोलते हैं। लोक कथाएँ सार्थक होती हैं, किंतु बिज्जी उन्हें अधिक अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। वे छिपे हुए भावों को भी उद्घाटित करते हैं। उनकी कहानी कला लासानी है। उनकी दृष्टि अचूक है, मर्मभेदी है।

बिज्जी का जन्म जोधपुर के गाँव बोरुंदा में हुआ था। यही उनकी कर्मभूमि रही, आजीवन यहीं रहे। बोरुंदा के बिज्जी ने उसे बिज्जी का बोरुंदा बना दिया, एक साहित्यिक-सांस्कृतिक तीर्थ।

बिज्जी को अनेक पुरस्कार और सम्मान मिले। लेकिन अपनी धुन में रमे बिज्जी के मन में किसी पहचान, पुरस्कार या सम्मान की व्यक्तिगत आकांक्षा कभी नहीं रही। उनकी आकांक्षा अथवा महत्वाकांक्षा तो बस इतनी थी कि लोग लोक साहित्य को पहचानें, इसका सम्मान हो, इस गंगा का प्रवाह समूचे संसार में हो। फिर भी जैसे महात्मा गाँधी को नोबेल पुरस्कार के लिए न चुनना, नोबेल पुरस्कार समिति की चूक मानी जाती है, वैसे ही 2011 में साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए नामित बिज्जी को यह पुरस्कार न मिलना साहित्य का एक दुर्भाग्य ही माना जाएगा। गाँधी को शांति का नोबेल मिलता तो यह पुरस्कार धन्य होता। बिज्जी को अगर मिलता तो इस पुरस्कार की गरिमा बढ़ती। आश्चर्य है कि भारतीय ज्ञानपीठ भी यह गरिमा पाने से चूक गई।

राजस्थानी साहित्य बिज्जी को पाकर धन्य हुआ। लेकिन बिज्जी की विनम्रता कहती है कि वे अपनी माटी के लोक साहित्य के मन में से कण को ही प्रकाशित कर पाए। दूसरी ओर हर भाषा और लोक भाषा यह बाट जोहती है कि उसके आँचल में भी ऐसा समर्पित लोकधर्मी लेखक आए, लेकिन बहुत मुश्किल से होता है कि चमन में दीदावर पैदा हो।

बिज्जी द्वारा संगृहीत और पुनः सृजित राजस्थान की लोक कथाएँ कई खंडों में 'बातां री फुलवाड़ी' शीर्षक में प्रकाशित हुई हैं 'बातां री फुलवाड़ी' यानी किस्से-कहानियों की फुलवारी। बिज्जी मानो इस अनुपम वाटिका के अथक परिश्रमी माली हैं। आज बिज्जी का साहित्य अनेक भाषाओं में अनुवाद में उपलब्ध है, किंतु अनुवाद की संपूर्णता में स्वयं अनुवादक को संदेह रहता है। अनुवाद में वे सभी रंग खिल नहीं पाते, जो मौलिक में मौजूद होते हैं।

बिज्जी को पढ़ने का सुख बचपन से मिला है। उनके दर्शन का सुख भी एक बार मिला, साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन में। तब उन्हें साहित्य अकादेमी की महत्तर सदस्यता प्रदान की गई थी। बिज्जी के साथ उनके पुत्र थे। बिज्जी का मन उस समय किसी सोच में खोया, डूबा हुआ था। उन्होंने मुझे सुनकर भी नहीं सुना, देखकर भी नहीं देखा। जो भी बात हुई, उनके पुत्र कैलाश कबीर से हुई। वही कैलाश कबीर जिन्होंने बिज्जी साहित्य को अनुवाद के द्वारा हिंदी के आँगन में पहुँचाया है।

सिनेमा में बिज्जी का साहित्य

बिज्जी की कहानियाँ शब्द-चित्रात्मक, घटना-बहुल और चरित्र-प्रधान

हैं। सिनेमा के रजत पट पर इनको उतारना सहज है। बिज्जी की किसी कहानी पर पहली फिल्म 'दुविधा' 1973 में आई। यह मणि कौल की फिल्म है। इस फिल्म के लिए मणि कौल को सर्वोत्तम निर्देशन का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। मणि कौल की आलोचना उनकी फिल्मों की टेम्पो को लेकर होती है। फिल्म में गति होनी चाहिए, इन्हें स्टिल फोटोग्राफ की तरह नहीं दिखना चाहिए। फिल्म 'दुविधा' ऐसे ही चलती है, हालाँकि उसकी गति एक अलग तरह का दर्शन-सुख देती है। मणि कौल एक प्रयोगशील फिल्मकार थे। 'दुविधा' भी एक प्रयोगशील फिल्म है।

मणि कौल साहित्यिक अभिरुचि वाले फिल्मकार थे। उन्होंने मोहन राकेश की कहानी पर 'उसकी रोटी' फिल्म बनाई, उनके ही नाटक पर 'आषाढ़ का एक दिन' बनाई, विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास पर 'नौकर की कमीज' और मुक्तिबोध की रचना पर 'सतह से उठता आदमी' बनाई। वे धैर्यवान फिल्मकार हैं। उनकी फिल्में भी दर्शकों से धैर्य की माँग करती हैं। साहित्यिक क्लासिक को सिनेमायी क्लासिक में बदलने की जिद्दी वाला उनके जैसा फिल्मकार हिंदी सिनेमा में कोई दूसरा नहीं है। किसी ने मणि कौल को मजाक में सुझाया कि वे 'उसकी रोटी' बनाना छोड़कर कमाई के लिए अपनी रोटी पकाना शुरू कर दें। किंतु मणि कौल अपनी राह पर चलते रहे। उनके मन में अपनी फिल्मों की साहित्यिक कथावस्तु और प्रस्तुति की विशेष शैली को लेकर कभी दुविधा नहीं रही।

"बिज्जी की किसी कहानी पर पहली फिल्म 'दुविधा' 1973 में आई। यह मणि कौल की फिल्म है। इस फिल्म के लिए मणि कौल को सर्वोत्तम निर्देशन का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। मणि कौल की आलोचना उनकी फिल्मों की टेम्पो को लेकर होती है। फिल्म में गति होनी चाहिए, इन्हें स्टिल फोटोग्राफ की तरह नहीं दिखना चाहिए।"

'दुविधा' का प्रेम-पिपासु भूत उन इनसानों से बेहतर है, जो धन के लिए भावनाओं की कोई कद्र नहीं करते। नवविवाहिता के प्रेम में कैद भूत अपने प्रेम के प्रति सच्चा और ईमानदार है। प्रेम में पागल होकर वह संसार को धोखा दे रहा है, किंतु अपनी प्रेमिका को नहीं। वह रूप बदलकर सेठ और उसके घर वालों से तो छल करता है, किंतु छल-बल में वह इनसानों से परास्त हो जाता है और छागल (चमड़े की मशक) में कैद कर लिया जाता है। बिज्जी पाठकों के मन में लालची इनसानों की अपेक्षा प्रेम में सच्चे भूत के प्रति सहानुभूति जगाने में कोई दुविधा नहीं छोड़ते। भूत ने अपनी सच्चाई और समर्पण से बहू का दिल जीत लिया। धनप्रिय सेठपुत्र भूत से इस बाजी में हार गया।

'दुविधा' एक जटिल प्रेम कथा है। इसमें तथाकथित इंसान सर्वसम्मति से यह तय करते हैं कि प्रेम करना गुनाह है। यह स्त्री विमर्श की कहानी है। एक स्त्री की दुविधा की मार्मिक कहानी है। भूत के प्रेम को खोकर बहू की इच्छाएँ मर जाती हैं। प्रेमविहीन और इच्छाहीन बहू परिवार वालों के लिए आज्ञाकारी आदर्श बहू बन गई है।

श्याम बेनेगल ने हबीब तनवीर के नाटक 'चरणदास चोर' पर आधारित इसी नाम की फिल्म बनाई। यह नाटक बिज्जी की कहानी 'फितरती चोर' पर आधारित है। चरणदास की लोककथा में बिज्जी, हबीब तनवीर और श्याम बेनेगल, तीनों ने अपने मौलिक रंग भरे हैं, अपनी-अपनी सृजन विधाओं में।

'चरणदास चोर' एक हास्य कथा है, जो गहरी अर्थवान है। बिमल राय प्रस्तुत फिल्म 'काबुलीवाला', गुलजार की 'किताब', शेखर कपूर की 'मासूम' की तरह श्याम बेनेगल की 'चरणदास चोर' भी बच्चों की फिल्म नहीं है। यह अलग बात है कि इसे चिल्ड्रन'स फिल्म सोसायटी ऑफ इंडिया ने प्रोड्यूस किया है। लोक में गहरे उतरने की कला श्याम बेनेगल में है। 'चरणदास चोर' में छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति की अद्भुत छटा है। श्याम बेनेगल ने इसमें छत्तीसगढ़ के गैर-व्यावसायिक लोक कलाकारों से बेहतरीन अभिनय करवाया है।

चरणदास एक चोर है, लेकिन वह सच बोलता है। इसके लिए वह अपने गुरु के प्रति वचनबद्ध है। अपनी चौर्य कला में वह कभी मात नहीं खाता, लेकिन उसकी सत्यवादिता और सिद्धांत को झूठी दुनिया यह सहन नहीं कर पाती। वह मारा जाता है, किंतु गुरु को दिए

गए वचन नहीं तोड़ता। वह दक्षिणा में अपने गुरु को कुछ ऐसे वचन देता है, जिनके सच होने की संभावना उसके जीवन में दूर-दूर तक नहीं है। जैसे, वह सोने की थाली में नहीं खाएगा, अपनी शान में निकाले गए जुलूस में हाथी की सवारी नहीं करेगा और किसी राजकुमारी से विवाह नहीं करेगा। संयोगवश उसके जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, किंतु वह अपना वचन निभाता है।

स्मिता पाटिल की इसमें रानी की एक छोटी-सी भूमिका है। रानी चरणदास की सत्यवादिता से प्रभावित होकर उससे विवाह करना चाहती है। चरणदास इनकार कर देता है। वह किसी रानी से शादी नहीं करेगा, ऐसा वचन वह अपने गुरु को दे चुका है। हतप्रभ रानी कहती है कि किसी से मत कहना कि मैंने तुमसे शादी करने की इच्छा व्यक्त की है। सत्यवादी चरणदास यह झूठ बोलने से भी इनकार कर देता है। क्रुद्ध रानी उसका सर कलम करवा देती है।

श्याम बेनेगल समानांतर धारा के गंभीर विषयों के फिल्मकार माने जाते हैं। किंतु उन्होंने कुछ हास्य फिल्में भी बखूबी बनाई हैं। 'चरणदास चोर' भी अपनी प्रस्तुति में एक हास्य फिल्म है। यह श्याम बाबू की शुरुआती फिल्मों में से एक है। फिल्म निर्माण कैरियर के उत्तर काल में भी उन्होंने 'वेलकम टू सज्जनपुर' और 'वेल डन अब्बा' जैसी हास्य फिल्में बनाई हैं।

प्रकाश झा ने 1989 में बिज्जी की कहानी पर आधारित फिल्म 'परिणति' बनाई। यह उनकी शुरुआती लेकिन श्रेष्ठ फिल्मों में से एक है। 'परिणति' में प्रकाश झा फिल्मकार के रूप में पूर्णतः परिपक्व नजर आते हैं। यह फिल्म अपनी कहनी में स्पष्ट और प्रभावी है। 'परिणति' एक बोधकथा है। मनुष्य के बेइंतहा लालच का बेइंतहा दुष्परिणाम होता है, आत्मनाश ही उसकी परिणति होती है।

मणि कौल की 'दुविधा' एक शुद्ध कलात्मक फिल्म है। इसी कहानी पर अमोल पालेकर द्वारा बनाई गई फिल्म 'पहेली' एक व्यावसायिक फिल्म है, उसने अच्छा व्यवसाय भी किया। इसमें अमिताभ बच्चन, शाहरूख खान, रानी मुखर्जी जैसे कलाकारों ने काम किया है।

हबीब तनवीर और श्याम बेनेगल का 'चरणदास चोर' छत्तीसगढ़ी शैली में है। उसमें छत्तीसगढ़ का लोकरंग, बोली-ठोली और नृत्य-संगीत रचा-बसा है। लेकिन बिज्जी की कहानियों पर बनी बाकी फिल्में राजस्थानी रंग में हैं। मणि कौल ने तो अपनी 'दुविधा' बिज्जी के गाँव बोरुंदा में ही फिल्माई थी। अमोल पालेकर ने 'पहेली' की शूटिंग शेखावाटी के नाहरगढ़ की हवेलियों में की थी। प्रकाश झा की 'परिणति' में राजस्थानी लोक संस्कृति की झाँकी है। उन्होंने इसकी शूटिंग बीकानेर के पास की थी। बाद में प्रिंट खराब हो जाने के कारण इसे मुंबई के स्टूडियो में दुबारा शूट किया गया।

उदय प्रकाश ने साहित्य अकादेमी के लिए बिज्जी के जीवन पर केंद्रित डॉक्यूमेंट्री-'बिज्जी : द लिजेंड ऑफ दास्तान' बनाई। अपनी काव्यात्मक डॉक्यूमेंट्री में वे बिज्जी की उन जड़ों को खोजते हैं, जो उनके छतनार व्यक्तित्व के नीचे कुछ दृश्य और कुछ अदृश्य हैं। उदय प्रकाश ने 'बिज्जी का खजाना' शीर्षक से बिज्जी की कई कहानियों पर लघु फिल्में बनाई हैं। उनकी लघु फ़िल्म 'दूरी' तथाकथित सभ्य समाज और एक सरल ग्रामीण स्त्री के बीच निर्मम संवेदनहीनता की अपाट दूरी और दरार को दिखाती है।

2014 में पुष्पेंद्र सिंह की फिल्म 'लाजवंती' आई, जो बिज्जी की इसी नाम की कहानी पर आधारित है। यह फिल्म मणि कौल की 'दुविधा' के चार दशकों के बाद आई है। इस दौरान सिनेमा तकनीक ने कई मंजिलें तय की हैं। फिल्म 'लाजवंती' में पुष्पेंद्र के पास वह तकनीक तो है लेकिन शैली मणि कौल वाली ही है। वे मणि कौल स्कूल के फिल्मकार हैं, किंतु उनकी परंपरा को आगे नहीं बढ़ा पाए हैं।

बिज्जी ने अच्छा लिखा और खूब लिखा। उनके लेखन में गुण और परिमाण दोनों हैं। सिनेमा बिज्जी के साहित्य संसार का शतांश भी स्पर्श नहीं कर सका है। आठ सौ से अधिक कहानियों और अनेक उपन्यासों के उनके अनुपम खजाने में से कुछ कहानियों पर ही फिल्में बनी हैं। यह हमारे फिल्मकारों की लोक कहानियों के प्रति उदासीनता की मानसिकता दर्शाती है।

हाल-फिलहाल बिज्जी की एक और कहानी 'दोहरी जिंदगी' पर उनके पुत्र महेंद्र देथा ने फिल्म बनाने की घोषणा की है। उम्मीद है कि बिज्जी के लोक साहित्य को भविष्य में भी नाटक, टेलीविजन और सिनेमा जैसे लोकप्रिय माध्यमों के दर्शकों का उतना ही प्यार मिलेगा, जितना उनके पाठकों से मिला है।

दूर-देश : इंडोनेशिया

कालोनारंग–मरघट में होने वाली नृत्य नाटिका

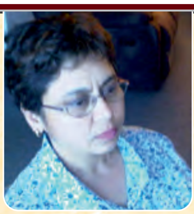

प्रीता व्यास

जन्म : भारत (वर्तमान में न्यूज़ीलैंड की निवासी)।

शिक्षा : एम.एससी. (रसायन), एम.ए. (इंग्लिश लिटरेचर), बी.एमसी.।

संप्रति : रेडियो, अखबार, पत्रिका (लोकमत समाचार, नागपुर/मेरी सहेली, मुंबई) में काम किया। भारत की कई पत्रिकाओं के विशेषांकों का संपादन, न्यूज़ीलैंड से प्रकाशित होने वाली त्रिभाषाई पत्रिका 'धनक' की हिंदी एडिटर।

प्रकाशित कृतियाँ : हिंदी–'पत्रकारिता परिचय और विश्लेषण', 'इंडोनेशिया की लोककथाएँ', 'दादी कहो कहानी', 'बालसागर क्या बनेगा', 'जंगलटाइम्स', 'कौन चलेगा चाँद पे रहने', 'लफ़्फ़ाज़ी नहीं है कविता'। अंग्रेजी–6 से 12 साल के बच्चों के लिए 175 पुस्तकें प्रकाशित। किसी भारतीय लेखक द्वारा पहली बार हिंदी और इंडोनेशिया भाषा में प्रकाशित द्विभाषाई पुस्तकें–'परचाकापान सेहारी हारी' (दैनिक वार्तालाप), 'टाटा बहासा हिंदी' (हिंदी व्याकरण), और 'हिंदी सेहारी हारी'।

इंडोनेशिया के बाली द्वीप को कौन है जो नहीं जानता। भारतीयों के लिए बाली पर्यटन के लिहाज से भी काफी जाना-माना नाम है। बाली घूमने आने वालों में संख्या के हिसाब से चौथे नंबर पर आते हैं भारतीय पर्यटक। अमूमन अपने समुद्र तटों और हिंदू मंदिरों के लिए जाना जाता है बाली, लेकिन बस इतना ही नहीं है, बहुत समृद्ध है इसकी संस्कृति।

बाली वासियों का सांस्कृतिक जीवन दोनों ही तत्त्वों को स्वीकारता है- अच्छाई और बुराई, अँधेरा और उजाला, उत्थान और पतन, बुरी आत्माएँ और अच्छी आत्माएँ। उनका मानना है कि जीवन में तारतम्यता बनाए रखने के लिए दोनों ही पक्षों का अपना महत्त्व है। यही वजह है कि जितना महत्त्व बाली के पारंपरिक जीवन में देवी का है उतना ही लेयाक (चुड़ैल) का।

इंडोनेशिया से मेरा नाता 24 साल से भी ज्यादा पुराना है। 11 वर्षों तक इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता में रहने के बाद अब पिछले 14 सालों से न्यूज़ीलैंड में हूँ। अब भी साल में एक बार इंडोनेशिया (जकार्ता) जाना होता है और बाली भी कई दफा जाने का संयोग बना है लेकिन इस बार यह अलग था, मेरे अनुभवों में इजाफा करने वाला।

पर्यटकों को अपनी संस्कृति से अवगत करने की दृष्टि से कई नए निर्माण हुए हैं। साथ ही, कई नए कार्यक्रम भी आरंभ हुए हैं। गरुड़ विष्णु कंचना कल्चरल पार्क एक ऐसा ही नवविकसित आकर्षण है। (गरुड़ विष्णु कंचना कल्चरल पार्क, जिसे 'जीडब्ल्यू कल्चरल पार्क' कहते हैं)। 60 एकड़ में बना है यह कल्चरल पार्क। यहाँ स्टेचू ऑफ़ लिबर्टी से भी 300 मीटर और ऊँची विष्णु की प्रतिमा है। जटायु की विशाल प्रतिमा है। राम, लक्ष्मण आदि सभी की मूर्तियाँ हैं। विशेष बात यह है कि यहाँ हर दिन पर्यटकों के लिए सात नृत्य आयोजन भी होते हैं।

सुबह छह बजे से रात के 10 बजे तक ये नृत्य आयोजन चलते हैं। अलग-अलग प्रकार के नृत्य। छोटे-से रंगमंच पर कला, संस्कृति और लुभावनी रंग-बिरंगी पोशाकों से सुंदरता की छटा बिखेर देते हैं स्थानीय कलाकार। स्थानीय बाँस के बने वाद्ययंत्रों (जिसे कहते हैं गामेलान) से निकलता है जादुई संगीत, जिसे सुन मंत्रमुग्ध बैठे रहो। यहाँ देखी मैंने दोबारा कालोनारंग। पुतु सुआस्ता और इंतान पेतेरसन दोनों इंडोनेशियाई मित्रों की आभारी हूँ जिनके कारण यह अद्‌भुत नृत्य नाटिका देख पाना, समझ पाना बहुत पहले भी (शायद 1998 में) संभव हुआ। पुतु ने तो मुझे अंग्रेजी में कालोनारंग की कथा भी लिख कर दी।

अमूमन यह नृत्य नाटिका रात गहराने पर ही मंचित होती है और मध्य रात्रि के बाद अपने चरम पर होती है। यह वह समय होता है जब माना जाता है कि बुरी शक्तियाँ प्रभावी होती हैं। इसका मंचन मरघट के समीप, मुक्ताकाश के नीचे होता है और पुरा दालेम (मृतकों का मंदिर) के बाहर घने बरगद के नीचे भी। वैसे अब दर्शकों की सुविधा के लिए, पर्यटकों के लिए, इसका मंचन पाँच सितारा होटलों में भी किया जाता है लेकिन इसका असली आनंद तभी मिलता है जब इसे इसकी मूल पृष्ठभूमि में देखा जाए।

आइए आपको भी ले चलते हैं दिखाने। मध्य रात्रि का सन्नाटा, सुगबुगाते दिलों को थामे दर्शक। पुरा दालेम (मृतकों का मंदिर) के बाहर बरगद की सघन शाखाओं तले कालोनारंग की डरावनी आकृति और झुरझुरी पैदा करने वाली आवाज़। बूढी-सी चुड़ैल, हाथों में छड़ी, कंधे पर झूलता शाल। कभी उसके पैर हवा में उछलते हैं, कभी वह जमीन पर गोल चक्कर लगाती है। अच्छाई के प्रतीक बारोंग, जो चार पैरों पर चलता है और कट-कट-कट दाँत बजाता है, उससे लड़ती है कालोनारंग (तस्वीरों में आप इन्हें देख सकते हैं)। असर ऐसा कि बच्चे दर्शक तो कई बार डर कर आँखें बंद कर लेते या अपनी इबू (माँ) या आया (पिता) की गोद में दुबक जाते।

कालोनारंग बाली की प्रसिद्ध चुड़ैल है, इसका अपना इतिहास है, अपनी कथा है। कालोनारंग का चरित्र केवल उन्हें ही नहीं लुभाता जो काला जादू में विश्वास करते हैं, बल्कि यह तो सभी बाली वासियों को लुभाता है। इस जैसी कोई दूसरी नृत्य नाटिका नहीं है जिसमें 'लेयाक' हो, जो रहस्यात्मकता लिए हो और जिसकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि हो।

कालोनारंग की कहानी एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, जिसे बाद में नृत्य नाटिका के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। कहते हैं कि यह घटना 11वीं शताब्दी की है। उस समय जावा में ऐरलांगा का शासन था। ऐरलांगा की माँ महेंद्रादात्ता जावा की राजकुमारी थी और उसके पिता दार्मोदयाना बाली के शासक।

बाली के 'लोन्तार दुरगा पुराना तात्वा' (दुर्गा पुराण) में इस बात का उल्लेख है कि राजा दार्मोदयाना ने महेंद्रादात्ता को धोखा दिया और कई रखैलें रखीं, इसलिए महेंद्रादात्ता चुड़ैल बन गई।

दुःखी महेंद्रादात्ता, बहातारी दुरगा (बुराई की देवी) के पास गई और उससे काला जादू सिखाने का अनुरोध किया ताकि वह अपने पति की रखैलों को मार सके। महेंद्रादात्ता चुड़ैल बन गई और अपने संगी-साथियों (भूत व चुड़ैल) के साथ कहर बन कर लौटी। पूर्वी जावा में उसने अनेक बीमारियाँ फैला दीं। मृत्यु तांडव कर उठी। अपनी जादुई शक्ति को बनाए रखने के लिए वह मरे हुए बच्चों का इस्तेमाल करती थी।

राजा ऐरलांगा ने उसे ख़त्म करना चाहा लेकिन कालोनारंग की जादुई ताकत के आगे विवश हो गया। राजा ने तब एक पवित्र व्यक्ति (साधु) ऐम्पु बहारादाह को भेजा। कालोनारंग नृत्य नाटिका में प्रायः यह अंतिम दृश्य ही मंचित किया जाता है जिसमें ऐम्पु बहारादाह उसे नष्ट करने का प्रयत्न करता है और कालोनारंग बचने का।

कुल मिलाकर कहानी यह कहती है कि अन्याय और ईर्ष्या ही काले जादू के जनक हैं। बाली में पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही विश्वास चला आ रहा है। यहाँ के लोग विश्वास करते हैं काले जादू में। वहाँ काला जादू करने वाले 'पेन्जीवा' कहलाते हैं और काले जादू का उपचार करने वाले 'पेनेनजेन'।

गाँवों में तो लोग पेन्जीवा में न सिर्फ विश्वास करते हैं, बल्कि उससे डरते भी हैं। कोई उससे दुश्मनी मोल नहीं लेता कि पता नहीं कौन-सी बीमारी लाद दे, कहीं जान ही न चली जाए।

बाली के प्रसिद्ध समाज विज्ञानी प्रोफ़ेसर नगुराह बागुस का कहना है कि बाली की जनता कालोनारंग को मानती है। वह उनके धर्म की नहीं, विश्वास की उपज है। बालीवासियों का मानना है कि विपदाओं से उनकी रक्षा रांगदा (दैत्य) ही कर सकती है। महेंद्रादात्ता ही अंत में 'रांगदा' बन जाती है और लोगों को विपदाओं से बचाती है। वह औरांग तालिस्मान (वे लोग जो जादू-टोने से लोगों को बचाने का काम करते हैं) की सदा रक्षा करती है।

इंडोनेशिया के बड़े शहरों के नए बच्चों से पूछो कि कालोनारंग को जानते हो? तो प्रति प्रश्न मिलेगा कि कौन कालोनारंग? लेकिन गाँवों के बच्चे आज भी कालोनारंग को जानते हैं।

लोक संस्कृति व लोक साहित्य : पर्याय हैं एक-दूसरे के

किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला साहित्य एवं सामाजिक आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन उसके साहित्य व संस्कृति के माध्यम से परिलक्षित होता है। श्रेष्ठ साहित्य का उद्‌गम स्रोत लोक संस्कृति है और शिष्ट साहित्य के विकास की जड़ें भी लोकमानस में ही होती हैं। संस्कृति व साहित्य एक-दूसरे के पर्याय हैं और उन्हें अलग करना असंभव है।

सुमन बाजपेयी

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी) व पत्रकारिता का अध्ययन।

प्रकाशित कृतियाँ : पाँच कहानी संग्रह व दस अन्य विधाओं पर पुस्तकें प्रकाशित। अंग्रेजी से हिंदी में 115 पुस्तकों का अनुवाद। बाल साहित्य में संलग्न व हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लेखन। विभिन्न पत्रिकाओं व प्रकाशन संस्थानों में संपादकीय पद पर कार्य। इस समय स्वतंत्र लेखन व पत्रकारिता।

संपर्क : 9810795705

ई-मेल : sumanbajpai@yahoo.co.in

लोक जुड़ रहा है संस्कृति के साथ

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के लोक (दर्शन) धातु में 'घन' प्रत्यय के योग से हुई है। प्राचीन काल से ही 'लोक' शब्द का प्रयोग होता आ रहा है। प्राचीन ग्रंथों में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'स्थान' के लिए किया गया है तो ऋग्वेद में इसका प्रयोग 'जनसाधारण' के लिए हुआ है। वहीं भरतमुनि के नाट्‌यशास्त्र, पतंजलि के महाभाष्य, पाणिनि के अष्टाध्यायी में यह शब्द वेदेतर, सामान्य जन तथा शास्त्रेतर के लिए प्रयुक्त हुआ है।

संस्कृति शब्द 'कृ' धातु में 'सम' उपसर्ग और 'क्रिन' प्रत्यय लगाने से बना है। 'कृति' का अर्थ है मनुष्य का किया हुआ कार्य, व्यवहार अथवा आचार। संस्कृति का अर्थ है अच्छी स्थिति, सुधारना-संवारना, शोधन करना आदि। अंग्रेज़ी में इसे 'कल्चर' कहा जाता है। संस्कृति शब्द 'संस्कार' से बना है। अतः संस्कृति का अर्थ हुआ विभिन्न संस्कारों द्वारा सामूहिक जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति। मैकाइवर और पेज ने संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी है—"संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनंद में पाए जाने वाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोक साहित्य अतीत की आवाज मात्र ही न होकर ऐसी कड़ी भी है जिसके अध्ययन के बिना किसी भी देश, समाज व संस्कृति से परिचित नहीं हुआ जा सकता है।

लोक और संस्कृति से प्रभावित होकर ही व्यक्ति का विकास होता है। यदि लोक के अभाव में मानव जीवन की कल्पना असंभव है तो वहीं संस्कृति का अभाव मानव जीवन को विशृंखलित कर देता है, इसलिए 'लोक' तथा 'संस्कृति' का गहरा संबंध है। लोक संस्कृति किसी भी देश और जाति का दर्पण

है, जिसमें उस देश तथा जाति की मान्यताएँ, परंपराएँ और रीतियाँ भावात्मक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं।

इस प्रकार लोक साहित्य, लोक संस्कृति की अपेक्षा पर्याप्त संकीर्ण क्षेत्र पर अपना अधिकार रखता है। कुछ भी हो लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य को विद्वानों ने अपनी परिभाषाओं के माध्यम से आदिम समाज के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने की चेष्टा की है और यह परिभाषा मात्र आंशिक सत्य कही जा सकती है क्योंकि अभिजात समाज में भी लोक संस्कृति की धाराएँ प्रवाहित रहती हैं, इस दशा में उनके लिए नई परिभाषाएँ गढ़ने की आवश्यकता रहेगी।

लोक साहित्य, लोक संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यदि लोक संस्कृति एक विशाल वट वृक्ष है तो लोक साहित्य उसकी एक शाखा है। यदि लोक संस्कृति शरीर है तो लोक साहित्य उसका एक अवयव है। लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तो लोक साहित्य का विस्तार संकुचित है। लोक संस्कृति की व्यापकता जन-जीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है तो लोक साहित्य लोगों के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों तक ही सीमित है। लोक साहित्य अंग है तो लोक संस्कृति अंगी है।

लोक साहित्य में बहुसंख्यक वर्ग का उल्लास और उच्छवास सन्निहित रहता है। इसके निर्माण में समग्र समाज का हाथ होता है अतः इसका झुकाव भी बहुसंख्यक वर्ग की ओर ही अधिक होता है। लोक साहित्य बहुधा अलिखित ही रहता है, लेकिन लोक साहित्य में लोक संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिंब ही होता है। साधारण लोक का हँसना, गाना, खेलना, रोना जिन शब्दों में व्यक्त हो सकता है वह सब कुछ लोक साहित्य की परिधि में आ जाता है। लोक साहित्य, लोक संस्कृति का एक भाग मात्र है। लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक गाथाएँ, कथा गीत, धर्म गाथाएँ, लोक नाट्य, नौटंकी, रासलीला आदि लोक साहित्य से जुड़े विषय हैं।

"लोक संस्कृति वह है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती है, और बौद्धिक विकास के निम्नतम धरातल पर उपस्थित रही है। लोक संस्कृति तो हमारी जीवन शक्ति होती है। दूसरी ओर किसी भी संस्कृति का संवाहक उसका लोक साहित्य माना जाता है। यह साहित्य पारंपरिक स्वरूप में लोक जीवन से प्रसूत जनसामान्य के आनंद तथा विषाद की सुर सरिता है, जो हजारों वर्षों से निरंतर प्रवाहित हो रही है।"

मानव को अनुरंजित व आनंदित करने वाले लोक साहित्य की परंपराएँ प्रत्येक देश व समाज में पाई जाती हैं। लोक साहित्य द्वारा ही युग-युग की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय हमें मिलता है।

अतीत को जोड़ती हैं वर्तमान से

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक तथा एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक पहुँचने वाले लोक साहित्य की परंपराएँ आज हम तक पहुँची हैं। अतीत को वर्तमान से जोड़कर उसमें परस्पर समन्वय स्थापित करना इस साहित्य की एक अलग विशेषता रही है, जिसके परिणामस्वरूप ही यह केवल सांस्कृतिक धरोहर एवं बीते हुए कल की आवाज मात्र न होकर आज भी जीवंत है। लोक साहित्य शब्द अंग्रेजी के 'फोकलोर' शब्द का अनुवाद है, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग अंग्रेजी के विद्वान विलियम टॉम्स ने किया था। इसी फोकलोर के समकक्ष हिंदी में लोक साहित्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। भारतीय लोक साहित्य जनता के व्यापक जनसमूह की सभी मौलिक सर्जनाओं का परिणाम है। यह केवल लोक काव्य या गीतों तक ही न सीमित न होकर जनता के जीवन धर्म, संस्कृति तथा परंपराओं से भी जुड़ा हुआ है। यह जनता के कंठों में देश के सभी राज्यों, भाषाओं और छोटी-छोटी बोलियों के रूप में भरा हुआ है।

लोक साहित्य को कुछ विद्वानों ने लोक श्रुति (वेद) कहा है। वेद का नाम श्रुति इसी विशेषता के कारण पड़ा है कि यह शिष्य परंपरा श्रुतिबल से चलता आया है। लोक साहित्य भी इसी कर्ण परंपरा से आगे बढ़ता है। वह दादी से पोती तक, नानी से धेवती तक श्रुति मार्ग से आया है। यही इसकी प्रथम एवं प्रमुख विशेषता मानी जाती है। यदि लेखबद्धता का वह गौरव लोक साहित्य को मिल जाए तो वह एक प्रकार से वह निष्प्राण हो जाएगा। लिपि का प्रसाद भले ही गीतों, गाथाओं, कथा-कहानियों को सुरक्षित रख ले, परंतु उनकी अनुप्राणिका शक्ति उसी क्षण नष्ट हो जाती है जबकि वे लेखनी की नोक पर सवार होकर कागज की भूमि पर उतरना आरंभ करते हैं। फ्रेंक सिजविक के ये शब्द कितने तथ्यपूर्ण हैं कि लोक साहित्य का लिपिबद्ध होना ही उसकी मृत्यु है। वस्तुतः लोक साहित्य की मौखिकता ने ही उसे व्यापकता एवं अनेक रूपता प्रदान की है।

लोक साहित्य एक ऐसा पालना है कि जिसमें लेखन प्रणाली से पूर्व की मानव संस्कृति की अमूल्य निधि, धर्म, दर्शन, संस्कृति, परंपराएँ, रीति-रिवाज, लोकाचार, संस्कार, कर्मकांड, नृत्य-गान काव्य-कथाएँ, नाटक आदि झूलते और खेलते रहे हैं। इसे पहेली, मुहावरे, लोकोक्तियों, लोक कथाओं, गीतों आदि के रूप में प्रत्येक जाति अपनी जीवन पद्धति और उसकी प्रणालियों को आगे आने वाली पीढ़ी को सौंपती रही है।

लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें इतिहास को इतिहास के ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जाता जैसा कि इतिहासकार करते हैं। वास्तव में लोक साहित्य कला काव्य संस्कृति और दर्शन का एक सुंदर स्वरूप है, जिसमें रचनाकारों की कल्पना और उनके आदर्शों का समावेश रहता है, जो सिर्फ प्राचीनता को ही प्रकट करता है।

लोक गीत छूते हैं भावनाओं के तारों को

जब बात लोक संस्कृति और साहित्य की आती है तो लोक गीतों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। जनसाधारण द्वारा गाए जाने वाले गीत 'लोक गीत' कहलाते हैं। लोक गीत मानव हृदय की सहज

कोमल भावों की अभिव्यक्ति हैं जिसमें किसी प्रकार के छंदों और भाषा का बंधन नहीं हो। लोक गीतों में समाज के समस्त पहलुओं सुख-दुःख, राग-विराग, आशा-निराशा, रहन-सहन, विश्वास और परंपराओं का सजीव चित्रण मिलता है।

आज से कई वर्ष पूर्व विवाह संस्कार का पूरा प्रकरण आदि से अंत तक गीतों के माध्यम से चलता था। प्रायः इस अवसर पर दोनों ही पक्ष सरस और भावपूर्ण गीत गाते हैं। विवाह के हर्ष-विषादमय वातावरण को यह लोकगीत अपने में समेट लेते थे। किंतु आधुनिक समाज में इस अवसर पर लोकगीत नहीं गाए जाते, बल्कि 'डी.जे.' बुलवाकर नए फ़िल्मी गीतों, रैप गानों आदि पर थिरका जाता है।

लोक गीतों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, ये ऋतुओं की मादकता से लेकर पर्वोत्स के हर्षोल्लास तथा जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में समाए हुए हैं; किंतु आधुनिकता की चकाचौंध में लोकगीत इतिहास के पन्नों में ही गुम होते जा रहे हैं। ढोल-मँजीरे की धुन डी.जे. और बैंड-बाजों के शोर में विलीन होकर रह गई है। पहले होली तथा दीपावली जैसे त्योहार पारंपरिक लोक गीतों और रीति-रिवाजों के साथ मनाए जाते थे, परंतु अब हाईटेक होली और दीवाली ने लोक परंपरा को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया है।

लोक गीत द्वारा मन की अभिव्यक्ति बड़े बेबाक और खुले रूप में होती है, यह बात आज की पीढ़ी को जाननी जरूरी है। जैसे अवधी का लोकगीत 'बाबा निबिया के पेड़' बेटी की विदाई की वेदना को अपने में समेटे हुए है जिसे लोक मानस नीम के पेड़ के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। नीम चिड़ियों का बसेरा है उसी प्रकार जैसे मायका बेटियों का। माता-पिता बड़े जतन से बेटी का पालन-पोषण करते हैं, विवाह पश्चात ससुराल चले जाने पर घर सूना हो जाता है, जिसे वह इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"बाबा निबिया के पेड़ जिनी काटई,
निबिया चिरैया बसेर,
बिटियन जिनि दुःख देहु भोरे बाबा
बिटियै चिरइया के नाय।
सगरी चिरइया उड़ी जइहैं बाबा,
रहि जइहैं निबिया अकेलि
सगरी बिटियवै चली जइहैं ससुरे,
रहि जइहैं मइका अकेलि।"

लोक गीतों के माध्यम से लोक संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक गतिशील रूप से पहुँचती थी, लेकिन आधुनिकता इसे धीरे-धीरे निगल रही है।

दूसरी ओर लोक गाथाएँ वे काव्यमय कहानियाँ होती हैं, जिनका आधार इतिहास है अथवा जिन्हें कालक्रम से ऐतिहासिक महत्त्व हासिल हो चुका है। हमने लोक गाथाओं को अवदान, साका, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया है। लोक साहित्य की प्राण, लोक कथाएँ लोक गाथा से भिन्न वस्तु हैं। लोक साहित्य के ये दोनों रूप आपस में भिन्न हैं। लोक कथाओं में कहानियों के दोनों तत्त्व-मनोरंजन एवं शिक्षा पाए जाते हैं। जो कहानियाँ केवल शिक्षा के लिए ही निर्मित हुई हैं, उनके लिए अलग नाम भी दिया गया है। इन कहानियों को भारतीय साहित्य में तंत्राख्यान या पशु-पक्षियों की कहानियाँ कहा गया है। अंग्रेजी में ऐसी कहानियों का नाम 'फेबिल' दिया गया है।

आधुनिक समय में अनिवार्यता

यह दुर्भाग्य है कि हमारी गौरवशाली सभ्यता और संस्कृति को पाश्चात्यानुकरण के कारण हीन समझा जाने लगा है। वर्तमान समय में शिक्षित व अभिजात्य वर्ग 'लोक संस्कृति' को 'गँवारों की संस्कृति' कह कर परिभाषित कर रहा है। आज की शिक्षा प्रणाली के प्रसार के कारण हम अपने ही देश, समाज व संस्कृति की प्राचीन परंपराओं से दूर हो गए हैं और थोड़े-से शब्दों की कोठरी में कैद हैं। उन शब्दों की परिधि हमें अपने ही देश में विदेशियों-सा बनाए हुए है। हम भौतिकवादी रहन-सहन से अपने देश की परंपराओं, संस्कृति, सभ्यता से दूर होते जा रहे हैं। पीढ़ी का अंतर, प्रवास की स्थिति, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण संयुक्त परिवार के टूटने के कारण बन रहे हैं। आज के युग में स्नेहपूर्ण संबंध कटुता में परिवर्तित हो रहे हैं। बदलते सामाजिक परिवेश तथा आर्थिक स्थिति के कारण वर्तमान समय में संस्कारों के प्रति विशेष उल्लास नहीं रहा है। विविध प्रकार के रीति-रिवाजों को 'लोक संस्कृति' का प्राण तत्त्व तथा धरोहर माना जाता है, क्योंकि यही रीति-रिवाज मानव जीवन को नियमित बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान समय में ये रीति-रिवाज कुछ धुँधले पड़ते जा रहे हैं।

आज की ई-दुनिया में जब हर स्तर पर विखंडन आधुनिकता का पर्याय बन गया है, ऐसे में लोक संस्कृति और लोक साहित्य दोनों की जरूरत बहुत बढ़ गई है। आधुनिकता ने सांस्कृतिक मूल्यों पर ऐसा प्रहार किया है कि प्राचीन चिंतन पद्धति का उपहास, सांस्कृतिक परिवेश से घृणा, अपनी परंपराओं के प्रति आक्रामक रवैया आज की पीढ़ी में नजर आता है। हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को क्या दे रहे हैं या क्या देकर जाएँगे, यह सवाल आंदोलित करने वाला है। हमारी विरासत जो लोक परंपराओं में निहित है, उन्हें उनके लिए बचाए रखना इस समय बेहद आवश्यक हो गया है। नए जीवन मूल्यों में भारतीय परंपराओं को यदि जीवित रखना है, तो इसे मध्यकालीन एवं प्राचीनकालीन, भारतीय सांस्कृतिक आख्यानों, कथाओं, गाथाओं के सांस्कृतिक संदेशों की संजीवनी देना अनिवार्य है। लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति इनका सर्वश्रेष्ठ स्रोत है। लोक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति की जड़ है, जिसके रस से भारतीय संस्कृति का पौधा पल्लवित हो सकता है।

बस्तर और लाला जगदलपुरी

17 दिसंबर, 1920 को जगदलपुर में जन्मे और लंबी अस्वस्थता के बाद 93 वर्ष की आयु में 14 अगस्त, 2013 की संध्या 07.00 बजे प्रयाण कर गए लाला जगदलपुरीजी ने साहित्य के माध्यम से बस्तर की अप्रतिम सेवा की। हिंदी के साथ-साथ हल्बी, भतरी एवं छत्तीसगढ़ी में भी कविता, गीत, मुक्तक, नाटक, एकांकी, निबंध आदि साहित्य की अनेकानेक विधाओं पर 1936 से सृजन आरंभ करने वाले लालाजी ने अपने अंतिम समय से कुछ ही दिनों पहले अपनी अस्वस्थता के कारण लेखन-कर्म छोड़ दिया था। उनकी पुस्तक 'बस्तर : इतिहास एवं संस्कृति' ने उन्हें पूरे देश में चर्चित कर दिया था। उनकी अंतिम पुस्तक 'बस्तर की लोक कथाएँ' (हरिहर वैष्णव के साथ संपादित) 2012 में नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित हुई। यह पुस्तक भी पूरे देश में चर्चित हुई और आज भी हो रही है। इसके भी अब तक दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें अनेकानेक सम्मानों के साथ ही छत्तीसगढ़ राज्य के सर्वोच्च राजकीय साहित्य सम्मान 'पं. सुन्दरलाल शर्मा साहित्य/आँचलिक साहित्य अलंकरण' से 2005 में विभूषित किया गया था।

रुद्र नारायण पाणिग्रही

जन्म : 15 जुलाई, 1963

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता, कहानी, व्यंग्य प्रकाशित। 'बस्तर : एक परिचय' (संपादन सहयोग), 'अतीत से आगत' (संपादन सहयोग), 'गोंचा पर्व की रथयात्रा', 'चिड़खा' (हल्बी, भतरी, गोंडी, दोरली कविता संग्रह), एक महाराजा मेरी नजर से।

संप्रति : सहायक पशु चिकित्सा क्षेत्र अधिकारी के पद पर जगदलपुर में पदस्थ।

संपर्क : 9425261457, 09752388123

ई-मेल : rudranarayanpanigrahi@gmail.com

साहित्य के मामले में चाहे देश की राजधानियाँ बदलती रही हों और छत्तीसगढ़ का बस्तर अंचल एक सुदूर कोने में माना जाता रहा हो, फिर भी साहित्य के लगभग सभी कालखंडों में यहाँ महत्त्वपूर्ण काम हुए हैं। कुछ को शोहरत, मान्यता मिली और कुछ को लोगों ने ध्यान नहीं दिया, और कुछ उपेक्षित भी रह गए। छत्तीसगढ़ को स्वतंत्र अस्तित्व में आए लगभग कोई डेढ़ दशक से अधिक ही हुए हैं, इतने कम समय में साहित्य का अपना स्वतंत्र मंच तैयार करना प्रारंभ कर दिया है, जो सुखकर प्रतीत होता है। छत्तीसगढ़ की साहित्य परंपरा निश्चय ही प्राचीन है। यहाँ जिस तरह संस्कृति का विकास होता रहा, क्रमशः साहित्य के विकसित होने के प्रमाण भी मिलते हैं।

बस्तर की साहित्य परंपरा तथा साहित्यिक उपलब्धियाँ देशभर में चर्चित रही हैं। वेरियर एल्विन एवं ग्रिग्सन जैसे अंग्रेजी प्रशासकों ने भी इसमें उल्लेखनीय योगदान दिया है। ये बात और है कि उन्होंने साहित्यिक विधा में कलम नहीं चलाई, फिर भी वे संदर्भ ग्रंथों में आज भी पढ़े जाते हैं। आजादी के पूर्व साहित्य सृजन की स्थिति पर गौर करें तो मालूम होता है कि रियासत कालीन (ब्रिटिश हुकूमत के दौर में) बस्तर में कुछ भी लिखना, बोलना, प्रकाशित किया जाना आपत्तिजनक ही था। उस दौर में कुछ मामलों में प्रकाशित साहित्य प्रतिबंधित करने की बातें प्रकाश में आई थीं। इसलिए स्वतंत्रता के पूर्व लिखित साहित्य नहीं के बराबर थी। 1908 में पं. केदारनाथ ठाकुर द्वारा रचित 'बस्तर भूषण' बस्तर अंचल में प्रथम लिखित साहित्य की प्रामाणिक पुस्तक मिलती है। बस्तर में कुछ साहित्यकारों ने इसे 'टूरिस्ट की डायरी' भी कहा। इसमें बस्तर के

जनजीवन के सभी पहलुओं की जानकारी समाहित है। इस कृति को इतना महत्त्वपूर्ण माना गया था कि इसकी समीक्षा 'सरस्वती' जैसी नामचीन पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसमें बस्तर का इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति, लोक साहित्य सहित बस्तर के घने जंगलों में उपलब्ध जड़ी-बूटियाँ, वनोपज की जानकारी प्रकाशित की गई थी। इसके अलावा रियासत काल में ही 1908 में 'राजा रूद्रप्रतापदेव पुस्तकालय' की स्थापना भी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र माना जाता रहा है, जो रियासतकालीन बस्तर की ऐतिहासिक, बौद्धिक घटना मानी जाती है।

बस्तर की लोक संस्कृति ही नहीं बल्कि जनजातीय संस्कृति भी अत्यंत समृद्ध रही है। कहा जाता है कि कई बार साहित्य की पहचान उसकी आँचलिकता से भी होती है, उसकी स्थानीयता से होती है। बस्तर में साहित्य सृजन का एक सुनहरा दौर तब आया जब गुलशेर अहमद खाँ शानी राष्ट्रीय पटल पर अपनी कृतियों 'शाल वनों का द्वीप' एवं 'काला जल' के कारण चर्चित हुए। शानीजी का रचनात्मक व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है। हिंदी की कथा लेखिकाओं में अग्रणी मेहरून्निसा परवेज़, गुलशेर अहमद खाँ शानी के समकालीन और उनके मित्र धनंजय वर्मा आदि ऐसे अनेक जाने-अनजाने साहित्यकारों ने प्रसिद्धि पाई जिनके बस्तर में रहते हुए बस्तर पर उनके अनुभवों पर आधारित अनेक साहित्य प्रकाशित हुए।

बस्तर के साहित्य पर चर्चा करते हुए छत्तीसगढ़ के जगदलपुर में जन्मे एक ऐसे साहित्यकार, जिनका नाम लाला राम श्रीवास्तव था किंतु 'लालाजी' के नाम से संबोधन पाने वाले कालांतर में लाला जगदलपुरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। बस्तर में जन्मे-पले-बढ़े स्व. लाला जगदलपुरी (1920-2013) ने हिंदी के साथ-ही-साथ छत्तीसगढ़ी, हल्बी एवं भतरी लोक भाषाओं में विपुल साहित्य रचना की और उनका नाम छत्तीसगढ़ के साथ-ही-साथ पूरे देश में चर्चित रहा है। लालाजी ने हिंदी के साथ-साथ बस्तर अंचल की विभिन्न लोक भाषाओं यथा गोंडी, हल्बी, भतरी, दोरली, परजी, धुरवी, मुंडा, ओझी, अँदकुरी, घड़वी, पनकी, लोहारी, बामनी, कोस्टी, बस्तरी आदि के लोक साहित्य एवं सांस्कृतिक धरोहरों के संग्रहण-संरक्षण-संवर्द्धन एवं विस्तार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

बस्तर के रियासत काल के राजा भैरमदेव के समय में दुर्ग (छत्तीसगढ़) क्षेत्र से कुछ परिवार विस्थापित होकर बस्तर आए थे। विस्थापित परिवारों में से एक परिवार के मुखिया थे—लोकनाथ। श्री लोकनाथजी राजघराने में बस्तर रियासत की कृषि आय-व्यय का हिसाब रखने का कार्य करते थे। उन्हें बहीदार के पद से राजघराने में नवाजा गया था। उनके ही परिवार में पोते के रूप में श्री लाला जगदलपुरी का जन्म 17 दिसंबर, 1920 को जगदलपुर में हुआ। लालाजी का लेखन कर्म 1936 में लगभग 16 वर्ष की आयु से प्रारंभ हुआ था। लालाजी मूल रूप में कवि थे। 1936 से साहित्य यात्रा का पथिक बस्तर के इतिहास और संस्कृति, लोकभाषा, मुहावरे और लोकोक्तियों, बाल साहित्य, राष्ट्रीय स्तर के साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन सहित, सैकड़ों कविताओं के साथ-साथ अन्यान्य विषयों में सतत् लेखन उन्हें साहित्य संग्राम का अपराजेय योद्धा बना देता है। आजादी के पूर्व छत्तीसगढ़ तो क्या, इसके आस-पास भी कभी न तो देश की साहित्यिक राजधानी रही और न ही कोई ऐसे केंद्र रहे, जिसका फायदा यहाँ के साहित्यिक परिवेश को प्रोत्साहन के रूप में मिल सका। यह दौर ही कुछ ऐसा था कि इन क्षेत्रों में सक्रिय लोगों को साहित्य जगत में बड़ा काम करने की आवश्यकता थी।

"लालाजी मूल रूप में कवि थे। 1936 से साहित्य यात्रा का पथिक बस्तर के इतिहास और संस्कृति, लोकभाषा, मुहावरे और लोकोक्तियों, बाल साहित्य, राष्ट्रीय स्तर के साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन सहित, सैकड़ों कविताओं के साथ-साथ अन्यान्य विषयों में सतत् लेखन उन्हें साहित्य संग्राम का अपराजेय योद्धा बना देता है। आजादी के पूर्व छत्तीसगढ़ तो क्या, इसके आसपास भी कभी न तो देश की साहित्यिक राजधानी रही और न ही कोई ऐसे केंद्र रहे, जिसका फायदा यहाँ के साहित्यिक परिवेश को प्रोत्साहन के रूप में मिल सका। ये दौर ही कुछ ऐसा था कि इन क्षेत्रों में सक्रिय लोगों को साहित्य जगत में बड़ा काम करने की आवश्यकता थी।"

लालाजी ने बस्तर के इतिहास तथा संस्कृति को पुस्तकबद्ध किया है, उनमें प्रमुख हैं—बस्तर इतिहास एवं संस्कृति, बस्तर लोक कला-संस्कृति, बस्तर की लोकोक्तियाँ। उनके काव्य संग्रहों में से प्रमुख—मिमियाती जिंदगी, दहाड़ते परिवेश, पड़ाव हमसफर, आँचलिक कविताएँ, जिंदगी के लिए जूझती गजलें, गीत धन्वा। बस्तर की लोक कथा संग्रहों में—हल्बी लोक कथाएँ, बस्तर की लोक कथाएँ, वन कुमार व अन्य लोक कथाएँ, बस्तर की मौखिक कथाएँ तथा प्रमुख प्रकाशित अनुवाद हैं—हल्बी पंचतंत्र, प्रेमचंद चो बारा कहनी, बुआ चो चिठीमन, रामकथा महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशन के अभाव में धरी की धरी रह गईं। लालाजी की लेखनी व प्रकाशन के आँकड़े यहीं समाप्त नहीं होते अपितु उनकी मिली-जुली रचनाएँ कई सामूहिक संकलनों में भी उपस्थित हैं, जिसमें समवाय, पूरी रंगत के साथ, चौमासा, ककसाड़, चिड़खा, रंगायन, लहरें, इंद्रावती, अतीत से आगत, बस्तर एक

परिचय, हिंदी का बालगीत साहित्य, सुराज, छत्तीसगढ़ी काव्य संकलन, गुलदस्ता, स्वर संगम, मध्य प्रदेश की लोक कथाएँ, लालाजी पर केंद्रित 'संकल्प-रथ' आदि प्रमुख हैं।

लालाजी नाटककार व रंगकर्मी भी थे, 1939 में जगदलपुर में गठित 'बाल समाज' नाम की नाट्य संस्था का नाम बदल कर 1940 में 'सत्य विजय थियेट्रिकल सोसायटी' रख दिया। इस संस्था द्वारा मंचित लालाजी के प्रमुख नाटक थे- 'पागल तथा अपनी लाज', 1949 के दशक में कुछ नाटकों में लालाजी ने अभिनय भी किया था।

सन् 1948-1950 के दौर में लालाजी ने दुर्ग से पं. केदार नाथ झा के हिंदी साप्ताहिक 'जिंदगी' के लिए बस्तर संवाददाता के रूप में कार्य किया। 1951 में अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र 'राष्ट्रबंधु' के बस्तर संवाददाता तथा समय-समय पर इलाहाबाद से प्रकाशित 'लीडर' व कलकत्ता से प्रकाशित 'दैनिक विश्वमित्र', रायपुर से प्रकाशित 'युगधर्म' के बस्तर संवाददाता रहे हैं। 1984 में देवनागरी लिपि में निकलने वाली संपूर्ण हल्बी पत्रिका 'बस्तरिया' का संपादन प्रारंभ किया, जो इस अंचल में अपनी तरह का अनूठा प्रयोग था। ऐसा अभिनव प्रयोग एक मिसाल है तथा यह जनजातीय समाज और मुख्यधारा के बीच संवाद की एक कड़ी थी, जिसमें संवेदनाओं के आदान-प्रदान की गुंजाइश भी थी और संघर्षरत रहने की प्रेरणा भी अंतर्निहित थी। प्रमुख पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में लालाजी की रचनाएँ स्थान बनाती रही हैं जिनमें नवनीत, कादम्बरी, श्री वेंकेटेश्वर समाचार, देशबंधु, नवभारत, अंगारा, दैनिक भास्कर, दंडकारण्य, बस्तरिया, युगधर्म, स्वदेश, अमृत संदेश, नई दुनिया, राजस्थान पत्रिका, बाल सखा, बाल-भारती, पाञ्चजन्य, रंग, ठिठौली आदि सम्मिलित हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं को पारंपरिक समाज की आधुनिक चेतना से संपन्न किया था। साहित्य के क्षेत्र में कवि, कहानीकार, नाटककार, एक अनुवादक, एक संपादक और भाषा को गढ़ने वाले भाषा वैज्ञानिक के रूप में भी उनकी प्रतिभा स्थापित होती है। उन्होंने सुदीर्घ साहित्य सेवा के साथ-साथ शोधपरक इतिहास और संस्कृति संबंधी लेखन किया। बच्चों के लिए शिशु, बाल सखा, बाल-भारती और समर झरोखा में भी खूब लिखा, पर फिर भी लालाजी मानते थे कि वे शास्त्रीय लेखन के धनी नहीं थे। मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी के पूर्व संचालक ने अपनी प्रस्तावना में कहा था कि 'पर्यटक और प्रवासी का मन लेकर बस्तरमय नहीं हुआ जा सकता, बस्तर को जानने के लिए बस्तरमय होना जरूरी है, लाला जगदलपुरी के रग-रग में लोक जीवन समाया हुआ है। बस्तर के लालाजी साधना से सिद्धि के द्वार तक पहुँचने वाले भूमिपुत्र हैं।

लालाजी को कई सम्मान भी प्राप्त हुए, जिनमें से मध्य प्रदेश लेखक संघ, भोपाल द्वारा प्रदत्त 'अक्षर आदित्य सम्मान', बख्शी सृजन पीठ भिलाई, छत्तीसगढ़ शासन प्रदत्त 'पं. सुंदर लाल शर्मा साहित्य सम्मान' प्रमुख हैं। इसके अलावा 'चंदैनी गोंदा' संस्था धमतरी द्वारा, दंडकारण्य समाचार प्रेस द्वारा, मध्य प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ के जगदलपुर अधिवेशन 1982 में, बाल कल्याण संस्थान कानपुर, जगदलपुर के 'सूत्र' संस्था द्वारा 1992 में, बस्तर शिल्पी परिवार संस्था, कोंडागाँव द्वारा 1987 में, पड़ाव प्रकाशन भोपाल जैसी अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित हुए।

बस्तर में लेखकों की पहली पीढ़ी के साथ समकालीन साहित्य की सभी अभिव्यक्तियों के साथ लालाजी का सीधा संबंध था। अतीत के प्रति गहरे लगाव तथा आगत के प्रति कल्पनाशील दृष्टि ने ही 93 वर्ष की आयु तक उन्हें सक्रिय बनाए रखा। कार्य करने की धुन में वे अविवाहित रहे। 14 अगस्त, 2013 को 93 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ। आज लालाजी का न होना एक अपूरणीय क्षति है, बस्तर के साहित्य जगत में उनकी कमी सदैव महसूस की जाएगी। लालाजी विश्व परिदृश्य को समझने वाले अलग तरह के लेखक, कवि व सचेत नागरिक थे, जिन्होंने कविता, कहानी, नाटक, कथा-संग्रह जैसे लगभग सभी विधाओं को अपने पारस स्पर्श से स्वर्ण में परिवर्तित किया। कहना होगा कि बस्तर और लाला जगदलपुरी सदैव ही पर्यायवाची शब्द रहे हैं।

धरती, समाज और संस्कृति से जुड़े हैं उत्तराखंड के लोक गीत-लोक नृत्य

देवताओं की भूमि और प्रकृति की अद्भुत देन है उत्तराखंड, लेकिन भारत का यह पहाड़ी राज्य सांस्कृतिक रूप से भी बेहद संपन्न है। इसका प्रमाण है कि यहाँ के विभिन्न लोक गीत और लोक नृत्य, जिनका इतिहास बहुत समृद्ध है। देश के

धर्मेन्द्र पंत

जन्म : 31 मार्च, 1970, गाँव स्योली, पौड़ी गढ़वाल।

शिक्षा : एम.ए. राजनीति शास्त्र, हेमवतीनंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल। पत्रकारिता स्नातक : माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल। पिछले 25 वर्षों से पत्रकारिता में। विभिन्न विषयों पर अब तक 2000 से अधिक आलेख प्रकाशित।

पुरस्कार : हिंदी पत्रकारिता के लिए विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित।

संप्रति : समाचार एजेंसी पीटीआई भाषा में कार्यरत।

इतिहासकारों ने हमेशा उत्तराखंड के दोनों मंडलों गढ़वाल और कुमाऊँ को नजरअंदाज किया। यहाँ के इतिहास को लेकर काफी भ्रांतियाँ हैं। ऐसे में उत्तराखंड के इतिहास को जानने और समझने का आधार लोक गीत ही बने, जिन्हें प्रामाणिक भी माना जाता है। इसलिए यह कह सकते हैं कि उत्तराखंड में लोक गीतों की परंपरा सदियों पुरानी है। 'चांचरी नृत्य' के बारे में कहा जाता है कि महाकवि कालिदास ने अपनी कृति विक्रमोर्वशीयम में 'चर्चरी' के नाम से इसका जिक्र किया था।

उत्तराखंड में लोक गीतों के कई स्वरूप मिल जाएँगे जो यहाँ की धरती, समाज, संस्कृति और परंपराओं से जुड़े हैं। इन गीतों में एक युग समाया होता है। हर ऋतु के लिए यहाँ अलग गीत और उनके भिन्न स्वरूप मिल जाएँगे। ये देवी-देवताओं से लेकर आम जनजीवन से जुड़े लोक गीत हैं। उत्तराखंडी लोक गीतों में से चौंफुला, चोपत्ति, थड़िया, बाजूबंद, न्योली, झुमैलो, ताँदी, झोड़ा, चांचरी, छपेली, झुमैला, मांगल, जागर, लामड़, रासों, पंडवार्त, खुदेड़ गीत, छूड़ा, दूड़ा, चौमासा, हारूल, झेन्ता, घसेरी गीत आदि प्रमुख हैं। अध्यात्म से लेकर प्रेम, विरह, शृंगार, जीवन दर्शन सब कुछ इन गीतों में समाया हुआ है। उत्तराखंड के अधिकतर लोक गीत नृत्य प्रधान हैं और इसलिए इन्हें लोक नृत्यों की संज्ञा भी दी जाती है। असल में उत्तराखंड में लोक गीत और लोक नृत्य एक-दूसरे के पूरक हैं। गीतों के कई ऐसे स्वरूप हैं जिन्हें लोक नृत्य के बिना अधूरा माना जाएगा, जैसे—चौंफुला, थड़िया, ताँदी आदि। इन लोक गीतों की आत्मा हैं लोक नृत्य। यहाँ पर हम उत्तराखंड के प्रमुख लोक गीतों और लोक नृत्यों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

मस्ती और प्रेम का लोक गीत-लोक नृत्य है 'चौंफुला'

मस्ती, प्रेम, अनुराग, हास्य, संदेह, प्रेरणा से भरा हुआ है चौंफुला गीत और नृत्य। यह गढ़वाल का लोक नृत्य है। हाथों और पाँवों के अद्भुत संगम से किए जाने वाले इस नृत्य के बारे में कहा जाता है कि सबसे पहले पार्वती ने शिव को रिझाने के लिए पहाड़ों पर यह नृत्य किया था। स्थानीय कथाओं के अनुसार पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती पिछले जन्म की सती का ही रूप थी। पार्वती ने पहले शिव को अपने सौंदर्य से रिझाने की

कोशिश की थी, लेकिन बाद में उन्होंने मिट्टी और पत्थरों से चौंरी बनाई। इसके चारों तरफ कई तरह के फूल खिले हुए थे। पार्वती ने अपनी सखियों के साथ अनुराग भरे गीत गाए। शिव ने इससे खुश होकर पार्वती से विवाह किया था। सभी दिशाओं में नृत्य करने और हर तरफ फूल खिले होने के कारण इस नृत्य का नाम चौंफुला पड़ा, जिसका अर्थ है फूलों की तरह खिलना।

डॉ. शिवानंद नौटियाल के अनुसार, चौंफुला गुजरात के गरबा, असम के बिहू और मणिपुर के रास जैसा ही नृत्य है। चौंफुला रात के समय में नृत्य के साथ गाया जाने वाला लोक गीत है जिसमें नर्तकों की कोई तय संख्या नहीं होती है। इस तरह का लोक नृत्य घर के आगे बने चौक यानी आँगन में किया जाता है और इसमें किसी वाद्ययंत्र का सहारा नहीं लिया जाता है। इसमें महिला और पुरुष नर्तक अलग-अलग पंक्तियों में एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े होते हैं लेकिन गोलाकार के कारण दोनों तरफ के आखिरी महिला और पुरुष नर्तक एक-दूसरे के पास में होते हैं। नृत्य करते समय नर्तक एक कदम आगे आकर अपनी दाईं हथेली से अपने बाएँ तरफ खड़े नर्तक की दाईं हथेली को बजाता है और फिर बाईं हथेली से अपने दाएँ तरफ खड़े नर्तक की बाईं हथेली से बजाते हुए वापस पहली वाली स्थिति में आ जाता है। इसमें एक तरफ के नर्तक गीत गाते हैं और फिर दूसरी तरफ के नर्तक उसे दोहराते हैं। यह नृत्य धीरे-धीरे गति पकड़ता है और फिर इसमें पाँवों की थाप भी शामिल हो जाती है। आखिरी क्षणों में गीत पर नृत्य पूरी तरह से हावी हो जाता है। गढ़वाल में कई चौंफुला गीतों का जिक्र किया जाता है। जैसे कि......

नणद तेरो दादू क जायूं च, दादू सुनार की ओटी च।
ओटी बैठि की क्या कादू च, नथ बेसर गढांदू च।
बौकी जिकुणी झुरौंदो च, नणद तेरो दादू क जायूं च। ....

(यह ननद और भाभी के बीच संवाद का गीत है। भाई अपनी बहन के लिए नथ बनवाने गया होता है। तब भाभी पूछती है, "ननद तुम्हारा भाई कहाँ गया है। भाई सुनार के पास गया है। वहाँ क्या कर रहा है। नाक की नथ बनवा रहा है। भाभी के दिल को दर्द दे रहा है।")

प्रकृति से जुड़े गीत भी चौंफुला का हिस्सा है। इसी तरह के एक गीत में राजा के बगीचे में फल खाते हुए शाखाएँ नहीं तोड़ने का अनुरोध किया गया है।

राजा की बागवान ब्वै, केकि डाळि होलि?
राजा की बागवान ब्वै, केकि डाळि होलि?
राजा की बागवान ब्वै, नारंगी डाळि होलि।
नारंगी तुम खेलियाँ पर फांकि ना मड़कै ना।

चौंफुला का जुड़वाँ भाई है 'चोपत्ति' या 'छौपति'

गढ़वाल मंडल का श्रृंगार रस से भरा हुआ संवादप्रधान लोक नृत्य है चोपत्ति या छौपति। कुछ स्थानों पर इन गीतों को 'चुरा' और 'लामणी' भी कहा जाता है। यह भी चौंफुला की तरह का ही नृत्य है जिसे सामूहिक रूप से गाया जाता है। गढ़वाल के रवांई और जौनपुर क्षेत्र में माघ से चैत्र तक चोपत्ति गीत गाए जाते हैं। इस तरह का एक गीत है ....

तिल जळोटा क्या धार बौ ये, मीम तू बतै दे बौ ये।
तेरा दादा ने गिंदोणी दे छै, मिन जळोटा वा धार द्यूरे।।

(इस गीत में देवर अपनी भाभी से पूछता है कि उसने जळोटा यानी मकान की दीवार पर बने छोटे से स्थान पर क्या रखा है, भाभी कहती है कि उसने वहाँ गुड़ रखा है।)

नवविवाहितों की यादों का पिटारा है 'थड़िया'

बसंत अपने यौवन पर है और सभी का मन प्रफुल्लित है। उन नवविवाहितों का भी जो पहली बार मायके आई हैं। एक जमाने में नई बहू के लिए ससुराल में काफी कष्ट हुआ करते थे और ऐसे में जब वह मायके लौटती थी तो सुसुप्त ऊर्जा हिलोरें मारने लग जाती है। ऐसे में प्रस्फुटित होते हैं कुछ गीत। ऐसे गीत जो उनके दर्द के लिए दवा का काम करते हैं। ऐसा ही लोक गीत और लोक नृत्य है थड़िया या थड्या, जिसके बारे में कहा जाता था कि यह नवविवाहितों के लिए समर्पित है। यह भी देवताओं का नृत्य है, जिसमें नवयुवतियाँ हिस्सा लेती हैं। घर के आँगन में किए जाने वाले इस गीत में भी वाद्ययंत्रों की जरूरत नहीं पड़ती। मधुर गीतों और ताल के साथ होता है थड़िया, जिसकी विषयवस्तु धार्मिक भावना से लेकर प्रकृति और समाज में घटित घटनाएँ होती हैं। अब इस गीत को ही देखिए जिसमें एक वीर पुरुष गजेसिंह को रनिवास नहीं जाने की सलाह दी जा रही है–

"रणिहाट नि जाणो गजेसिंह
राण्यूं को रणिहाट गजेसिंह
मेरो बोल्युं मान्याली गजेसिंह..."

थड़िया में नर्तकों को दो टोलियों में बाँटा जाता है। नर्तक एक-दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर लयबद्ध तरीके से गीत गाते हुए आगे बढ़ते हैं। इस गीत में सिर, कमर और पाँवों का तालमेल बनाए रखना अहम होता है।

सेरा कि मिडोळयूँ नै डाळि पयाँ जामी, नै डाळि पयाँ जामी
द्यबतूं का सतन, नै डाळपियाँ जामी।

सेरा या स्यारा (वह खेत जिसमें धान की रोपाई होती) की मेड़ पर पयाँ (पहाड़ पर उगने वाला पेड़ जिसे देवताओं का पेड़ माना जाता है) की नई कोंपल फूट गई है। देवताओं की कृपा से नया पेड़ उगा है।

कुमाऊँ का प्रमुख नृत्य गीत है 'झोड़ा'

झोड़ा मुख्य रूप से कुमाऊँ क्षेत्र का लोक गीत-लोक नृत्य है जो काफी हद तक थड़िया से मिलता-जुलता है। झोड़ा भी थड़िया की तरह नृत्य गीत है, जिसमें गायकों के दो दल होते हैं। यह एक-दूसरे के हाथों में हाथ डालकर या कंधे पर हाथ रखकर किया जाने वाला नृत्य है, जिसमें आगे पीछे किया जाने वाला पद संचालन अद्भुत होता है। 'झोड़ा' शब्द हिंदी के 'जोड़ा' शब्द से लिया गया है। पुरुष और महिलाएँ मिलकर दो दल बनाते हैं और इनके बीच में होता है 'हुड़का वादक', जो गीत की शुरुआत करते हुए नृत्य करता है और बाकी सारे नर्तक फिर उसके साथ दोहराते हैं। इसके दो रूप मुक्तक झोड़े और प्रबंधात्मक झोड़े प्रचलित हैं। इन गीतों में देवताओं की स्तुति से लेकर प्रेम के गीत भी शामिल हैं। माघ के महीने में चाँदनी रातों का यह प्रमुख नृत्य है लेकिन विवाह और मेलों के अवसरों पर भी इन गीतों को गाया जाता है।

हरि कुणजो कै मैना फूललो? हरि कुणजो कै मैना फूललो?
हरि कुणजो मौ मैना मौळलो। हरि कुणजो मौ मैना मौळलो।।

(कुणजु यानी एक सुगंधित औषधीय पौधे पर फूल किस महीने आते हैं। कुणजु में माघ के महीने में कोंपल फूटती हैं।)

भारत के प्राचीन लोक गीतों में शामिल है 'चांचरी'

कालिदास ने अपनी कृति विक्रमोर्वशीयम में चांचरी का जिक्र 'चर्चरी' नाम से किया है और इसीलिए कहा जाता है कि यह भारत के सबसे पुराने लोक गीतों और लोक नृत्यों में से एक है। उत्तराखंड में चांचरी मुख्य रूप से दुशांत (गढ़वाल और कुमाऊँ का सीमावर्ती क्षेत्र) में गाया जाता है। इसमें गीत, नृत्य और ताल का सुंदर समन्वय होता है। यह काफी हद तक झोड़ा से मिलता-जुलता है। इसीलिए कहा जाता है कि यह झोड़ा का ही प्राचीन रूप है। झोड़ा और चांचरी में मुख्य अंतर नृत्य और गीत की गति का है। चांचरी में गति झोड़ा की तुलना में धीमी है। इन दोनों की शैलियों में भी अंतर पाया जाता है। चांचरी के गीतों के स्वरों का आरोह और अवरोह भी दीर्घ होता है। चांचरी भी सामूहिक लोक नृत्य है, जिसमें पुरुष और महिलाएँ भाग लेते हैं। एक वृत्त में आधे भाग में पुरुष और आधे भाग में महिलाएँ होती हैं। एक जमाने में चांचरी में धार्मिक भावना से जुड़े गीतों की अधिकता थी, लेकिन अब इसमें प्रेम गीतों का भी समावेश हो गया है। धार्मिक भावना से जुड़ा 'खोल दे माता खोल भवानी धर्म किवाड़ा' कुमाऊँ क्षेत्र का चांचरी लोक नृत्य गीत है जो माँ भगवती को समर्पित है। रंगीन परिधान भी इसका एक आकर्षण है। कुमाऊँ के दानपुर का 'चांचरी' सबसे आकर्षक लोक नृत्य माना जाता है। चांचरी उत्तराखंड के अलावा हिमाचल प्रदेश और नेपाल में भी प्रचलित है।

'झुमैलो' के साथ आओ झूम लें

चांचरी की तरह झुमैलो भी प्राचीन समय से चला आ रहा नृत्य गीत है। कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीयम' और 'रघुवंशम' में एक नृत्य गीत 'जांबालिका' के बारे में लिखा है जो पूरी तरह से झुमैलो से मिलता-जुलता है। यह भी बसंतकालीन गीत है, जिसे महिलाएँ बसंतपंचमी से लेकर वैशाखी तक गाँव में किसी के आँगन में करती हैं। इस नृत्य में पर्याप्त गति होती है। मतलब यह नृत्य झूमने का अहसास दिलाता है। इसके अलावा अकसर इस गीत के आखिर में झुमैलो आता है, जिसके कारण इसका नाम झुमैलो पड़ा, जैसे—

फूलण डालि त फूलि त जाली झुमैलो
हमरा पहाड़ छ्वटा बड़ा बुग्याळ झुमैलो

और

ऐ गेन ऋतु बौड़ी, दैंई जन फेरो झुमैलो
ऊबा देसी ऊबा जाला, ऊँदा देसी ऊँदा झुमैलो

यह नृत्य गीत अमूमन विवाहित बेटियाँ अपने मायके में करती हैं, जिसमें उनके बचपन और यौवन से जुड़ी यादें समाहित होती हैं। इनमें प्रकृति का वर्णन होता है। इस नृत्य गीत में नर्तक एक-दूसरे का हाथ पकड़कर दो कदम आगे बढ़ते हैं और फिर आगे झुकते हैं और फिर दो कदम पीछे की तरफ आकर सीधे होते हैं और इस बीच हल्के से वृत्त में बढ़ते रहते हैं।

संवाद प्रधान लोक गीत हैं 'बाजूबंद' और 'न्योली'

उत्तराखंड में बाजूबंद गीत काफी लोकप्रिय हैं और सदियों से इनका प्रचलन रहा है। गढ़वाल क्षेत्र में अगर बाजूबंद है तो कुमाऊँ में न्योली अधिक प्रचलित है लेकिन इन दोनों का स्वरूप लगभग एक जैसा है।

श्रीनिवास राव : साहित्य अकादेमी लेखकों का घर है

भारत की राष्ट्रीय साहित्यिक संस्था साहित्य अकादेमी एक स्वायत्त संस्थान के रूप में पिछले 64 वर्षों से कार्यरत है। भारत की प्रमुख साहित्यिक संस्था के रूप में अकादेमी पुरस्कार, महत्तर सदस्यता, फ़ेलोशिप, अनुदान, पुस्तक प्रकाशन, साहित्यिक कार्यक्रम, कार्यशाला, प्रदर्शनी आदि के माध्यम से मान्यता प्रदत्त 24 भारतीय भाषाओं में साहित्य को संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्रदान करती है। अकादेमी भारत की सीमाओं के बाहर भारतीय साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिए दुनिया के विभिन्न देशों के साथ साहित्यिक विनिमय कार्यक्रमों का आयोजन भी करती है। साहित्य अकादेमी विद्वानों के व्याख्यान, रचनाकारों के रचनापाठ एवं सभी प्रकार की संगोष्ठियों की रिकॉर्डिंग को संरक्षित करती है। अभिलेखागार में क्लासिक साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व संरक्षित हैं। अकादेमी की शाखाएँ चारों महानगरों में फैली हैं। दिल्ली और कोलकाता में दो बड़े पुस्तकालय हैं जहाँ 24 भाषाओं की किताबें उपलब्ध हैं। साथ ही, ऑनलाइन सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। 'हू इज़ हू' अकादेमी द्वारा भारतीय लेखकों के परिचय का प्लेटफ़ॉर्म है। अकादेमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों को उनके दिल्ली मुख्यालय स्थित किताबघर, स्वाति भवन, मंदिर मार्ग स्थित बिक्री विभाग, विश्वविद्यालय एवं कश्मीरी गेट मेट्रो स्टेशन पर अवस्थित बिक्री-काउंटर से ख़रीदा जा सकता है।

डॉ. के. श्रीनिवास राव साहित्य अकादेमी के सचिव पद का दायित्व 2013 से संभाल रहे हैं। यों तो, पिछले 25 वर्षों से वे अकादेमी के विभिन्न पदों पर रहते हुए अपनी सेवाएँ देते रहे हैं। इस लंबी कार्यावधि में कई प्रमुख संस्थानों से संबद्ध रहे और अनेक परियोजनाओं पर काम किया, जैसे—भारतीय काव्यशास्त्र का विश्वकोश; भारतीय साहित्य की राष्ट्रीय ग्रंथ सूची; विदेश में भारतीय साहित्य आदि-आदि। उन्होंने कई अंतरराष्ट्रीय मंचों पर साहित्य अकादेमी का प्रतिनिधित्व किया है और वर्तमान में भी कई प्रमुख संस्थानों के सदस्य हैं।

*साहित्य अकादेमी के कार्यकलाप और भविष्य की योजनाओं पर सचिव **श्रीनिवास राव** से **आरती स्मित** की बातचीत—*

डॉ. आरती स्मित

संप्रति-संलग्नता : स्वतंत्र लेखन, कविता, कहानी, आलोचना, समीक्षा, शैक्षिक विमर्शकार एवं सलाहकार के रूप में अनेक संस्थानों से संबद्धता, आकाशवाणी नाटक कलाकार, रेडियो नाटक, धारावाहिक एवं रूपक लेखन तथा विविध केंद्रों से प्रसारण, कविता, कहानी, साक्षात्कार द्वारा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से संबद्धता।

व्यवसाय : विविध संस्थानों के लिए स्वतंत्र रूप में अनुवाद, संपादन, समीक्षा; निर्देशन-प्रबंधन-बाल-विभाग, साहित्यायन प्रकाशन। महासचिव : साहित्यायन ट्रस्ट।

राव साहब! सचिव का पद अकादेमी का सर्वोच्च प्रशासनिक पद है और निश्चित तौर पर दायित्व भी बड़ा है। इस दायित्व को ग्रहण करते हुए आपको कैसा लगा?

अच्छा लगता है। मैं बहुत पहले से इस संस्था से जुड़ा हुआ हूँ। पहले उपसचिव था, उसके पहले मुंबई शाखा में क्षेत्रीय सचिव रहा, उससे भी पहले ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी था। अकादेमी में काम करना, जुड़े रहना मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे इससे जुड़कर, सेवा करने का अवसर मिला, चाहे किसी भी पद पर हो।

अकादेमी से आप लंबे समय से जुड़े हैं—कर्म के साथ भावनात्मक स्तर पर भी। इस संस्था के बारे में कुछ बताएँ।

साहित्य अकादेमी की स्थापना 1954 में हुई। पं. जवाहरलाल नेहरू, जिन्हें एक बड़ा लेखक भी माना जाता है, हमारे पहले अध्यक्ष हुए। तब से लेकर आज तक यह स्वायत्त संस्था के रूप में लेखकों का घर बना हुआ है। यह एक स्वायत्त संस्था के रूप में काम करती है। भले ही, भारत सरकार के नियमों का यहाँ पालन होता है, वार्षिक ऑडिट भी होता है, लोकसभा में भी वार्षिक रिपोर्ट पेश की जाती है, लेकिन इसकी स्वायत्तता बरक़रार है, क्योंकि यह लेखकों द्वारा स्थापित, लेखकों द्वारा संचालित लेखकों का घर है। जो भी प्रारूप तैयार होता है, वह लेखकों द्वारा ही तय होता है। साहित्य अकादेमी में 24 भाषाओं को मान्यता दी गई है। भारत सरकार ने 22 भाषाओं को मान्यता दी है। अकादेमी ने दो अन्य भाषाओं—एक राजस्थानी, दूसरी, भारतीय अंग्रेज़ी को बहुत पहले मान्यता दी है। सीधे अंग्रेजी कहने के बजाय 'भारतीय अंग्रेजी' कहना अच्छा होगा। 24 भाषाओं के लिए 24 सलाहकार समितियाँ होती हैं। हर समिति में दस लेखक होते हैं, यानी कि कुल 240 लेखक सलाहकार समिति में शामिल होते हैं। इन 240 लोगों द्वारा अकादेमी की गतिविधियाँ संचालित होती हैं।

जैसे, किस तरह का कार्यक्रम होना चाहिए; किस किताब का अनुवाद होना चाहिए; किस तरह की किताब छपनी चाहिए; किस तरह दूसरी भाषा की रचना अपनी भाषा में प्रकाशित हो और अपनी भाषा का दूसरी भारतीय भाषा में—इसकी सलाह और निर्देशन सलाहकार समिति के सदस्यों द्वारा दी जाती है। ऑफिस—चाहे सचिव हो या उपसचिव हो—उसका क्रियान्वयन करता है।

आप अकादेमी को लेखकों का घर मानते हैं। जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, सचमुच इस तरह की स्वायत्तता किसी अन्य संस्था में दिखाई नहीं पड़ती। मंत्रालय के अंतर्गत होने पर भी उसका कोई हस्तक्षेप नहीं!

जी बिल्कुल! साहित्य अकादेमी में सब कुछ लेखक हैं।

साहित्य अकादेमी, प्रतिवर्ष बच्चों, युवाओं और वयस्क साहित्य प्रेमियों, साहित्य-चिंतकों को साथ लेकर और उनके लिए भी, छोटे-बड़े कई कार्यक्रम करती है तो क्या इनका स्वरूप भी सलाहकार समिति ही तय करती है या कार्यालय के अधिकारी?

जी, हर एक भाषा की सलाहकार समिति ही यह तय करती है कि उसकी भाषा में आगे क्या काम करना चाहिए। जैसे कि बोडो भाषा में क्या करना चाहिए, किस तरह की किताब छपनी चाहिए? किस लेखक की जन्म-शताब्दी है और कौन-से लेखक महत्त्वपूर्ण हैं—ये सारी बातें बोडो की सलाहकार समिति तय करेगी क्योंकि उनके पास ही इससे संबद्ध जानकारियाँ होती हैं। 24 भाषाओं के सलाहकार साल में एक बार अपनी-अपनी भाषा पर विमर्श के लिए मिलते हैं और पूरे साल के कार्यक्रम का प्रारूप बनाते हैं। फिर उसी को हम क्रियान्वित करते हैं।

इन सलाहकार सदस्यों की नियुक्ति कौन करता है? क्या उनके लिए कोई चयन समिति है?

सही समझा, चयन समिति है। अलग स्तर पर कौंसिल है। एक तो सबसे उच्च स्तर पर 'जनरल कौंसिल' है। इसमें 99 सदस्य हैं। इनमें 24 भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि होते हैं, 20 विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि होते हैं, हर एक राज्य और केंद्रशासित प्रदेश के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं, आठ सुप्रसिद्ध-सम्मानित लेखक होते हैं, जैसे हिंदी के दस, अंग्रेज़ी के तीन, गुजराती के दो ...इस तरह 99 सदस्य होते हैं। हर भाषा के चुने गए रचनाकार अपनी-अपनी भाषा के दस लेखकों का चयन कर सलाहकार समिति गठित करते हैं, इसमें हमारा एक कार्यकारी मंडल अलग है जो इसका अनुमोदन करता है।

अच्छा तो सभी कार्यक्रम इन सदस्यों द्वारा तय होते हैं और उन्हें स्वीकृति के लिए कार्यकारी मंडल के पास भेजना होता है?

जो छोटे-मोटे कार्यक्रम हैं, जैसे साहित्य मंच या छोटे-छोटे लिट्रेरी फोरम वगैरह, बहुभाषी का कोई कार्यक्रम करना है, वो तो हम अपने अध्यक्ष से बात करके निर्धारित कर लेते हैं। जब किसी एक भाषा का कार्यक्रम होता है—जैसे कि बोडो में महिला लेखन में परिसंवाद करना है तो वह बोडो की सलाहकार समिति तय करेगी; हिंदी में कोई संगोष्ठी करनी है तो वह हिंदी की सलाहकार समिति तय करेगी। मगर, भारतीय भाषाओं को मिलाकर जो कार्यक्रम करना है वो अपने अध्यक्ष से संपर्क करके हम लोग निर्धारित कर लेते हैं।

साहित्य अकादेमी 'बाल साहित्य पुरस्कार', 'युवा पुरस्कार' एवं 'साहित्य अकादेमी पुरस्कार' प्रतिवर्ष तो देती ही है। इसके अतिरिक्त भाषा सम्मान भी देती है। यह सम्मान किसे दिया जाता है और इसके लिए मानदंड क्या हैं?

देखिए, 24 भारतीय भाषाओं की गतिविधियाँ तो रफ़्तार में चल रही हैं, मगर बहुत-सी ऐसी भाषा और बोलियाँ हैं—लगभग 1000 होंगी, उनका भी संरक्षण करना चाहिए। उन भाषाओं और बोलियों को भी संरक्षित करना चाहिए, जिनमें लिखा गया और लिखा भी जा रहा है। जैसे अवधी है, ब्रज है और पूर्वोत्तर में वे आठ राज्य, जिन्हें 'आठ बहनें' कहा जाता है, वहाँ 300 से 400 बोलियाँ हैं। कहीं-कहीं तो दो-दो किलोमीटर पर भाषा बदल जाती है। चार ऐसी भाषाओं के लिए, जिन्हें संविधान में जगह नहीं मिली है, भाषा सम्मान देकर हम उन भाषाओं के लेखकों को प्रोत्साहित करने का प्रयास करते हैं। इसी तरह मध्यकालीन साहित्य पर जिनका बड़ा काम है, उनमें से दो को भाषा सम्मान दिया जाता है। इस तरह कुल छह साहित्यकार भाषा सम्मान से सम्मानित किए जाते हैं। एक साइक्लोसिस्टम है।

'प्रेमचंद फ़ेलोशिप' और 'आनंदकुमार स्वामी फ़ेलोशिप' का ख्याल कैसे आया और यह किन्हें दिया जाता है? इसके अंतर्गत फ़ेलो को क्या प्रदान किया जाता है?

प्रेमचंद की 125वीं जयंती धूमधाम से मनाई गई। उसी समय यह सोचा गया कि क्यों न उनके नाम से कुछ किया जाए, जिससे उनका नाम और बढ़े। टैगोर और प्रेमचंद—ये दो आइकॉन ऐसे हैं जो विदेशों में भी जाने जाते हैं। वैसे तो और भी बड़े लेखक हैं, जिन्हें हमारे समकालीनों में गिना जाएगा। इसलिए उनके नाम से फ़ेलोशिप शुरू की गई। यह फ़ेलोशिप सार्क देशों में शामिल देशों से आने वाले स्कॉलर के लिए शुरू की गई है। इसके तहत सार्क देशों में से किसी भी देश से स्कॉलर अधिकतम तीन महीने के लिए भारत आकर रह सकते हैं और यहाँ किसी भी जगह जाकर भारतीय साहित्य पर रिसर्च कर सकते हैं। अकादेमी उन्हें यात्रा व्यय, आवासीय सुविधा के साथ ही 25,000 रुपये प्रतिमाह देती है। स्कॉलर रिसर्च पर लेक्चर देते हैं और रिसर्च की एक रिपोर्ट हमें भेज देते हैं। कोई-कोई पंद्रह दिनों के लिए या महीने भर के लिए ही आते हैं। दूसरा फ़ेलोशिप आनंदकुमार स्वामी के नाम पर दिया जाता है। ये दक्षिण एशियाई चिंतक रहे हैं। ये दोनों फ़ेलोशिप उन विदेशी विद्वानों के लिए है, जिनका नाम भारतीय दूतावासों से आता है।

वार्षिकोत्सव के अतिरिक्त अकादेमी का ऐसा कोई बड़ा कार्यक्रम जिसकी जानकारी सबको नहीं। दूर-दराज के लोग अकादेमी के सभी प्रमुख क्रियाकलापों को कैसे जान-समझ सकेंगे? क्या इस दिशा में विचार किया गया या कोई शुरुआत की गई?

वार्षिकोत्सव की ही बात करें तो पिछले पाँच वर्षों से वार्षिकोत्सव को व्यापक स्वरूप दिया गया। कुछ अलग रूपरेखा बनी। पहले केवल

एक समारोह अवार्ड प्रेजेंटेशन, और एक लेक्चर होता था, अब छह दिनों में 250 लेखकों को शामिल किया जाता है। कार्यक्रम सेमिनार हॉल से निकलकर बाहर परिसर तक पहुँचा। अब, एक दिन मान्यताप्राप्त भाषा को लेकर, एक दिन ग़ैर-मान्यताप्राप्त भाषा को लेकर कार्यक्रम हो रहे हैं, एक पूरा दिन 'युवा साहिती' कार्यक्रम युवा लेखकों के लिए रखा जाता है, इसी तरह पूर्वोत्तर राज्यों के लेखकों के लिए एक दिन दिया जाता है। किसी एक विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित होती है। पुरस्कर्ता किसी एक स्कॉलर के साथ बैठते हैं। उनके संवाद को 'आमने-सामने' नामक कार्यक्रम में रखा जाता है। साहित्य अकादेमी का वार्षिकोत्सव एक सप्ताह का हो रहा है, इसके साथ ही अनुवाद पुरस्कार, युवा पुरस्कार, बालसाहित्य पुरस्कार के कार्यक्रम त्रिदिवसीय लघु उत्सव के रूप में अलग-अलग राज्यों के किसी भी शहर में आयोजित किए जा रहे हैं। ताकि दूर-दराज के लोगों को भी जानकारी मिले, वे भी बड़े लेखकों से मिल सकें, उनसे बातें कर सकें। इसके अलावा तीन दिनों का एक साहित्य उत्सव किया, जिसमें छोटे से लेकर दिग्गज तक—सभी साहित्यकारों को शामिल किया गया। लगभग 70 लेखकों को इसमें भागीदारी के लिए बुलाया गया। इसी तरह पूर्वोत्तर में 'पूर्वोत्तरी' के नाम से गुवाहाटी में कार्यक्रम किया। जब भारत और पाकिस्तान के संबंधों को लेकर पूरा देश तनाव में था, उस समय कारगिल में लेखकों को ले जाकर कार्यक्रम किया। पहली बार इस तरह का बड़े लेखकों का सम्मेलन वहाँ हुआ था। इससे यह संदेश गया कि भारत शांतिप्रिय है। पिछले दिनों लक्षद्वीप में लेखक सम्मेलन किया। इस तरह आप देखें, अकादेमी के इतिहास में बहुत कुछ नया काम जुड़ा। हम दूर-दराज में, नई-नई जगह जाकर काम कर रहे हैं।

आज हम ग़ौर करें तो किशोर मनोविज्ञान आज जो है, वह दस साल पहले नहीं था। वह प्रेमचंद युग में नहीं था। आज का किशोर जो जानता-समझता है, हम अपनी किशोरावस्था में नहीं समझते थे। आज समाज में आए दिन जो घटनाएँ घटित हो रही हैं, उसमें किशोर संलिप्त भी है और शोषित भी। ऐसी स्थिति में अगर यह कहा जाता है कि इन समसामयिक विषयों को पुस्तकों में शामिल करना उचित नहीं तो क्या ऐसा कहना सही है? आप क्या मानते हैं? इन विषयों को पुस्तकों में आना चाहिए या नहीं?

बिल्कुल आना चाहिए। कुछ संस्थाओं को इस पर एकाग्र होकर आगे बढ़ना चाहिए। बढ़ते बच्चों के लिए स्पेस ज़रूरी है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास इस क्षेत्र में थोड़ा काम कर रहा है। इसकी 'नेहरू बाल पुस्तकालय' योजना बच्चों के लिए है। साहित्य अकादेमी नौ से 16 वर्ष के बच्चों को ध्यान में रखकर पुस्तकें प्रकाशित कर रही है। इधर कुछ और योजनाएँ भी कार्यान्वित हुई हैं। हमने बच्चों के रचनात्मक क्षमता के विकास के लिए कार्यशालाएँ कीं। कुछ दिनों पहले राजस्थान में, उसके कुछ पहले जम्मू में कार्यशालाएँ आयोजित कीं। इधर हम चाह रहे हैं कि लेखकों को लेकर स्कूलों में जाएँ और कविता कैसे पढ़ना चाहिए, कहानी कैसे पढ़नी चाहिए, इस पर कार्यक्रम हो। कुछ जगहों पर किया भी। मगर, जितनी तेज़ी से चलना चाहिए, उतनी तेज़ी से नहीं हुआ। जहाँ तक किशोरों की बात है, किसी एक संस्था से नहीं होगा। कई संस्थाओं को काम करना होगा—मिलकर करना होगा।

यदि कोई निजी संस्था बच्चों के लिए काम कर रही है। किसी मोड़ पर यदि वह अकादेमी से सहयोग चाहे तो क्या अकादेमी सहयोग देगी?

बिल्कुल देगी। हम भी उस कार्यक्रम में साथ रहेंगे।

आर्थिक रूप से कमज़ोर और नई संस्थाएँ अकादेमी से किस प्रकार जुड़ सकती हैं? इसकी प्रक्रिया क्या है?

प्रक्रिया कोई जटिल नहीं है। यदि कोई पंजीकृत संस्था है, तो वह एक पत्र लिखे कि वह किस तरह कार्य करना चाहती है और अकादेमी से उसे किस तरह का सहयोग चाहिए। हम उसके आवेदन को थोड़ा विचार करके उसे स्वीकृति दे देते हैं। अकादेमी भी आयोजन से जुड़ी रहेगी।

क्या क्लासिक रचनाओं को फिर से सरल शब्दों में लिखा जाना चाहिए? यदि लेखक चाहे तो क्या कोई संस्था लेखक को इस कार्य के लिए आर्थिक सहयोग और प्रोत्साहन देगी?

बिल्कुल सही कहा आपने। यह समस्या केवल बच्चों की नहीं है; बड़ों की भी है। वे कितनी बार शब्दकोश खोलकर बैठे रहेंगे। अभी हमने 100-200 साल पहले लिखे साहित्य का पुनर्लेखन शुरू करवाया है। एक तो वह अब अनुपलब्ध है, तो उसके संरक्षण के लिए और दूसरा, किसी बड़े अच्छे स्कॉलर से फॉरवर्ड लिखवा रहे हैं। संपादकीय जैसा—उस किताब के शब्दों को लेकर 25-30 पृष्ठों का पूरा (रिप्रिंट) पुनर्मुद्रण! अब तक इस तरह की 12-13 पुस्तकें आ चुकी हैं। एक सीरीज तैयार करवा रहे हैं। अभी मराठी संत तुकाराम की पुस्तक आई, और भी कई हैं। इस प्राक्कथन से यह लाभ होगा कि आज का युवा पाठक शुरू के 20-30 पृष्ठ पढ़कर किताब के बारे में समझ सकेंगे।

नई पीढ़ी को कोई संदेश देना चाहेंगे?

यही कि युवा लेखक अच्छा साहित्य पढ़े। अच्छा साहित्य जितना अधिक पढ़ेंगे, उतना अधिक लिखेंगे। दूसरा, यह करें कि जो वरिष्ठ लेखक उनके आस-पास हों, उनसे मार्गदर्शन लें, सीखें और लेखन में सुधार करें। जो लिखें, जितना लिखें, हमारी भारतीयता को, हमारी संस्कृति को बरक़रार रखें ताकि आज का युवा कल अपनी आने वाली पीढ़ी को भारतीय सभ्यता-संस्कृति की धरोहर दे पाए। क्योंकि जो भारतीय संस्कृति है, उसका साहित्य के माध्यम से प्रचार-प्रसार हो। और पहले के लेखक का लेखन आज भी समसामयिक और प्रासंगिक है। कालिदास आज भी याद किए जाते हैं। वो 400-500 साल पहले लिखे साहित्य में जो विमर्श है, आज की तारीख़ में हम उसका क़दम-क़दम पर सामना कर रहे हैं। आज का लेखक भी उस चीज़ को ध्यान में रखते हुए पढ़े। भारतीयता बनी रहे—आज से 400 साल बाद भी!

लोक गीतों के दरवेश देवेंद्र सत्यार्थी

श्री देवेंद्र सत्यार्थी का जन्म 28 मई, 1908 को पटियाला के कई सौ साल पुराने भदौड़ ग्राम (जिला संगरूर) में हुआ। श्री सत्यार्थी हिंदी, उर्दू और पंजाबी भाषाओं के विद्वान तथा साहित्यकार थे। उनका मूल नाम देवइंडर बत्ता था। श्री सत्यार्थी लोक गीत अध्ययन के प्रणेताओं में से रहे। उन्होंने देश के कोने-कोने की यात्रा कर वहाँ के लोकजीवन, गीतों और परंपराओं को आत्मसात किया और उन्हें पुस्तकों और वार्ताओं में संगृहीत कर दिया जिसके लिए वे 'लोकयात्री' के रूप में जाने गए।

देवेंद्र सत्यार्थी ने लोक गीतों का संग्रह करने हेतु देश के विभिन्न क्षेत्रों की यात्राएँ की थीं तथा इन स्थानों के संस्मरणों को भावात्मक शैली में उन्होंने लिखा है। 'क्या गोरी क्या साँवली' तथा 'रेखाएँ बोल उठीं' सत्यार्थी के संस्मरणों के अपने ढंग के संग्रह हैं। उन्हें लोक गीतों का शौक था और उन्होंने 1935 में 'गिद्दा' नाम से अपना पहला लोक गीत संकलन प्रकाशित करना शुरू किया, जिसे कई लोगों द्वारा एक मौलिक कार्य माना जाता है। उन्हें 1977 में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से सम्मानित किया गया। 12 फरवरी, 2003 को 94 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया।

प्रकाश मनु

जन्म : 12 मई, 1950, शिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश

संप्रति : बाल साहित्य की सौ से अधिक पुस्तकें। हिंदी में बाल साहित्य का पहला व्यवस्थित इतिहास 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' लिखा। इसके अलावा संस्मरण, साक्षात्कार, आलोचना और साहित्येतिहास से संबंधित विचारात्तेजक लेखन। कई कन्नड़ समेत अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद।

पुरस्कार : बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' पर साहित्य अकादेमी का पहला बाल साहित्य पुरस्कार। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के 'बाल साहित्य भारती पुरस्कार' और हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित। कविता-संग्रह 'छूटता हुआ घर' पर प्रथम गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार।

संपर्क : 09810602327

ई-मेल : prakashmanu01@gmail.com

देवेंद्र सत्यार्थी लोक साहित्य के दरवेश हैं, जिन्होंने दशकों पहले लोक गीतों की खोज में इस महादेश का चप्पा-चप्पा छान मारा था। लोक गीतों में उन्हें धरती का सच्चा दर्द और आवाजें सुनाई पड़ती थीं। साथ ही, भारतीय जनता का सच्चा रस-उल्लास, आनंद-उत्सव, रीति-रिवाज, लोक परंपराएँ, राग-विराग और सुख-दुःख की वे अनकही बातें भी, जो हजारों हृदयों में घुमड़ती थीं और फिर चुपके-चुपके किसी जनपद या ग्रामांचल के लोक गीतों में ढलकर हवा में गूँज उठती थीं। कहने को ये गाँव की सीधी-सादी अनपढ़ जनता के गीत थे, पर वे इस देश की महान संस्कृति और हजारों वर्ष पुरानी लोक परंपराओं के वाहक भी थे, जिनसे इस देश की कोटि-कोटि जनता के मन और आत्मा का साक्षात्कार किया जा सकता था। अलग-अलग बोलियाँ और भाषा बोलने वाले जनपद और ग्रामांचलों के ये लोक गीत मिलकर एक ऐसा साझा पुल बनाते थे, जिसे समझे बिना इस महान देश की हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता और संस्कृति को समझना असंभव था।

शायद यही वजह थी कि गाँधीजी ने लोक साधक देवेंद्र सत्यार्थी के इस काम को भी आजादी की लड़ाई का एक हिस्सा माना और 'विशाल भारत' में देश के अलग-अलग ग्रामांचलों के लोक गीतों पर छपने वाले सत्यार्थीजी के लेखों को वे बहुत रसपूर्वक पढ़ा करते थे। इतना ही नहीं, काका कालेलकर को विशेष रूप से भेजकर उन्होंने सत्यार्थीजी को कांग्रेस के महा अधिवेशन में बुलाया और उनका सम्मान किया।

प्राचीन इतिहास और संस्कृति के विद्वान वासुदेवशरण अग्रवाल ने उन्हें 'जनपदीय भारत का सच्चा चक्रवर्ती' कहा, जिनके रथ का पहिया अपनी ऊँची ध्वजा से ग्रामवासिनी भारतमाता की वंदना करता हुआ सब जगह फिर आया है। मैं समझता हूँ, इससे अच्छे अल्फाज सत्यार्थीजी के धूल-धूसरित पैरों के निरंतर सफर की कहानी को नहीं दिए जा सकते।

सत्यार्थीजी ने लोक गीत-संग्रह की अपनी अनोखी और शानदार धुन के कारण बिना किसी संस्था या सरकारी मदद के, अकेले अपने बूते जो काम कर दिखाया, वह खुद में इतना बड़ा और कालजयी है कि सिर्फ उसी के कारण देवेंद्र सत्यार्थी आधुनिक भारत के सबसे बड़े 'संस्कृति-दूत' साबित होते हैं। महात्मा गाँधी ने सत्यार्थीजी के लोक साहित्य संबंधी इस काम का महत्त्व समझा था और बार-बार चिट्ठियों में वे लिखते हैं कि अलग-अलग प्रदेश और भाषा के लोक गीतों पर लिखे गए "तुम्हारे लेख मैं खूब रस ले-लेकर पढ़ता हूँ।" यह 'रस' इसलिए भी है कि सत्यार्थीजी जब किसी भाषा के लोक गीतों पर लिखते हैं तो उनके शब्दों में उन लोक गीतों का-सा सरल आवेग खुद ही फूट पड़ता है और उस आवेग में किसानों, मजदूरों, स्त्रियों के सुख-दुःख और इच्छाओं का संसार, गहरा-गहरा-सा पारिवारिक रस और हुमचती फसलों का संगीत बसा होता है।

सत्यार्थीजी लोक गीतों में समूची जनता का दुःख-दर्द और धरती की आकुल पुकार सुनते हैं और उसी को अपने सीधे-सादे ममत्व भरे शब्दों में कह डालते हैं। इसीलिए उनके लोक साहित्य संबंधी लेखों में वह चीज आती है, जो महात्मा गाँधी को भी अपनी सारी राजनीतिक व्यस्तताओं के बावजूद रस ले-ले कर पढ़ने के लिए तैयार करती है। शायद इसीलिए महात्मा गाँधी को सत्यार्थीजी का काम देश की आजादी की लड़ाई का एक जरूरी हिस्सा ही लगता था। वे बार-बार इस बात को जोर देकर कहते हैं कि सत्यार्थीजी निरंतर गाँव-गाँव भटककर, लोक गीतों के संग्रह के जरिए भारत की आत्मा की जो खोज कर रहे हैं, वही तो आजादी की लड़ाई की बुनियादी प्रेरणा है। हम भारत की जिस विशाल जनता के दुःख-दर्द की बात करते हैं, उसकी समूची अभिव्यक्ति तो अलग-अलग भाषाओं के लोक गीतों में ही होती है।

"महात्मा गाँधी को सत्यार्थीजी का काम देश की आजादी की लड़ाई का एक जरूरी हिस्सा ही लगता था। वे बार-बार इस बात को जोर देकर कहते हैं कि सत्यार्थीजी निरंतर गाँव-गाँव भटककर, लोक गीतों के संग्रह के जरिए भारत की आत्मा की जो खोज कर रहे हैं, वही तो आजादी की लड़ाई की बुनियादी प्रेरणा है। हम भारत की जिस विशाल जनता के दुःख-दर्द की बात करते हैं, उसकी समूची अभिव्यक्ति तो अलग-अलग भाषाओं के लोक गीतों में ही होती है।"

इसीलिए जब कांग्रेस का फैजपुर अधिवेशन हुआ तो गाँधीजी ने काका कालेलकर को विशेष रूप से भेजकर, सत्यार्थीजी को इस महाधिवेशन में भाग लेने के लिए न्योता दिया। वहाँ गाँधीजी और बहुत-से अन्य प्रतिनिधियों ने सत्यार्थीजी के काम की खुलकर प्रशंसा की। सत्यार्थीजी जब अंग्रेजी राज में हाहाकार करती जनता के दर्द पर यह लोक गीत सुनाते हैं, "रब्ब मोया, देवते भज्ज गए, राज फिरंगियाँ दा...!" तो इस पर गाँधीजी की टिप्पणी गौरतलब है। वे मानो भावनाओं में बहते हुए रोमांचित होकर कहते हैं, "अगर तराजू के एक पलड़े पर मेरे और जवाहरलाल के सारे भाषण रख दिए जाएँ और दूसरे पर अकेला यह लोक गीत, तो लोक गीत वाला पलड़ा ही भारी रहेगा।"

सत्यार्थीजी की यही अनोखी धुन जब अनवरत यात्राओं से होते हुए उन्हें शांतिनिकेतन ले जाती है, तो रवींद्रनाथ ठाकुर उन्हें देखकर स्वागत-भाव से कहते हैं, "मुझे खुशी है, जो काम मैं नहीं कर पाया, उसे आप पूरा कर रहे हैं।" और तब इस अलबेले, धुनी यायावर को पता चलता है, अपनी किशोरावस्था में स्वयं रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक बैलगाड़ी पर बैठकर सारे बंगाल के भ्रमण की योजना बनाई थी ताकि गाँव-गाँव जाकर वहाँ के लोक गीतों को जिन्हें बांग्ला में 'पल्ली गीत' कहते हैं, इकट्ठा किया जा सके। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की यह योजना पूरी न हो सकी, इसीलिए सत्यार्थीजी में उन्हें अपनी अधूरी यात्राओं के पूरे होने का सपना साकार होता दिखाई देने लगता है। वे मानो गदगद होकर उनकी डायरी में लिखते हैं, "सारी दुनिया के खानाबदोशों, मेरे शब्दों में छोड़ जाओ अपनी गंध!"

और इसी दौर का एक प्रसंग जो महामना मदनमोहन मालवीय से जुड़ा हुआ है, सत्यार्थीजी कभी-कभी बड़े संकोच के साथ सुनाया करते थे। हुआ यह कि सत्यार्थीजी घूमते-घूमते देहरादून पहुँचे तो मालूम पड़ा, यहाँ मालवीयजी भी आकर ठहरे हुए हैं। सत्यार्थीजी मालवीयजी से पहले मिल चुके थे और महामना उनके लोक गीतों के संग्रह के काम और तड़प से परिचित थे, उनके प्रशंसक भी थे। सत्यार्थीजी जब उनसे मिलने गए तो मालवीयजी बहुत खुश होकर प्रेम से मिले, उनके कामों और लेखन के बारे में पूछा। सत्यार्थीजी अभी यह सब बता ही रहे थे कि अचानक महामना की नजर उनके धूल-धूसरित पैरों पर पड़ी। उन्होंने कहा, "आप एक मिनट रुकिए।"

महामना भीतर गए और लौटे तो उनके हाथ में एक जोड़ी मोजे थे। उन्होंने सत्यार्थीजी से पैर धो लेने के लिए कहा और उसके बाद अपने हाथ से मोजे पहनाने लगे। सत्यार्थीजी बेहद संकोच से भर गए। पैर पीछे हटाते हुए बोले, "अरे-अरे, मालवीयजी, यह आप क्या करते हैं, मैं तो आपके बेटे के बराबर हूँ।"

इस पर महामना मालवीयजी का जवाब था, "तो क्या कोई पिता अपने पुत्र को मोजा नहीं पहना सकता? ये पैर न जाने कहाँ-कहाँ भटककर आए हैं। आज अपने हाथ से तुम्हें मोजे पहनाऊँगा, तो मुझे सुख मिलेगा।"

बाद में सत्यार्थीजी का संकोच भाँपकर उन्होंने अपने बेटे से उन्हें मोजे पहनाने के लिए कहा।

आज यह सोचकर रोमांच होता है कि इस धुनी शख्स ने बीस बरस तक बिना रुके, बिना थके घूम-घूमकर भारत के कोने-कोने,

गाँव-गाँव की यात्रा की है। और सभी भाषाओं के लगभग तीन लाख लोक गीत इकट्ठे किए। वह भी इस हालत में जबकि कहीं से कोई सहारा नहीं था। किसी संस्था का कोई अनुदान या फेलोशिप नहीं और कभी-कभी तो हालत यह होती थी कि जेब में चार पैसे तक नहीं। किसी ने किराए के पैसे जुटा दिए, तो आगे बढ़ गए। न कल के भोजन का ठिकाना, न ठहरने का। और यों अकेले एक व्यक्ति द्वारा लोक गीतों या किसी भी लोककला के क्षेत्र में इतना बड़ा काम न पहले कभी हुआ, न बाद में। देवेंद्र सत्यार्थी यहाँ अकेले हैं, अपनी मिसाल खुद।

आजादी से पहले ऑल इंडिया रेडियो के निदेशक अहमद शाह बुखारी 'पितरस' ने सत्यार्थीजी से अपने इकट्ठे किए गए चुनिंदा लोक गीत ऑल इंडिया रेडियो को देने का आग्रह किया, जिन्हें उस समय के बेहतरीन गायकों के स्वर में प्रस्तुत किया जा सके। सत्यार्थीजी ने अलग-अलग भाषाओं के एक हजार एक चुनिंदा लोक गीत ऑल इंडिया रेडियो को दिए। लेकिन पारिश्रमिक की बात आई, तो सत्यार्थीजी ने तुरंत प्रतिवाद किया। बोले, "देखिए, इन्हें मैंने जगह-जगह घूमकर इकट्ठा अवश्य किया है, पर ये गाँव वालों की चीजें हैं। उन्हीं की पूँजी हैं। इन पर तो कॉपीराइट 'भारतमाता' का है!" और सचमुच उन लोक गीतों का पारिश्रमिक उन्होंने नहीं लिया।

सत्यार्थीजी के लोक साहित्य संबंधी अध्ययन की सबसे बड़ी खासियत यह है कि जब वे लोक गीतों पर लेख लिखते हैं, तो उनकी भाषा में भारत की विशाल जनता का दुःख-दर्द बहा चला आता है। जिस भाषा में भारत का गरीब मजदूर या किसान सोचता है, जो उसके रोने-गाने, उल्लास और सपनों की भाषा है, वही भाषा खुद-ब-खुद सत्यार्थीजी की कलम से उतरने लगती है। इसीलिए जब सत्यार्थीजी के ये लेख 'मॉडर्न रिव्यू' जैसी अंतरराष्ट्रीय प्रसिद्धि की पत्रिका में छपने जाते थे, तो रामानंद चटर्जी का संपादकीय विभाग को यह आदेश भी साथ ही नत्थी होता था कि, "सत्यार्थीजी द्वारा किए गए लोक गीतों के अनुवाद का एक भी शब्द इधर से उधर न किया जाए और न उन्हें बदला जाए। इसलिए कि लोक गीतों के हृदय को सत्यार्थीजी और उनके अल्फाज ही सबसे बेहतर ढंग से खोल सकते हैं, कोई और नहीं।"

यों देवेंद्र सत्यार्थी की लोक गीतों की तलाश ने उन्हें 'इतिहास पुरुष' भले ही बना दिया हो, पर जब वह सब कुछ छोड़कर लोक यात्रा पर निकले तो ख्याति की बात गौण ही रही। अपने प्रथम लोक गीत-अध्ययन 'धरती गाती है' की भूमिका में वे अत्यंत विनत भाव से लिखते हैं—

"आज सोचता हूँ कि कैसे इस लघु जीवन के बीस वर्ष भारतीय लोक गीतों से अपनी झोली भरने में बिता दिए तो चकित रह जाता हूँ। कोई विशेष साधन तो था नहीं। सुविधाओं का तो कभी प्रश्न नहीं उठा था। फिर भी एक लगन अवश्य थी-एक धुन। आज सोचकर भी यह कहना कठिन है कि नए-नए स्थान देखने, नए-नए लोगों से मिलने की धुन अधिक थी या वस्तुतः लोक गीत-संग्रह करने की धुन। जो भी हो, मैंने निरंतर लंबी-लंबी यात्राएँ कीं। कई जनपदों में तो मैं दो-दो, तीन-तीन बार गया। इन्हीं यात्राओं में मैंने शिक्षा की कमी को भी पूरा किया।"

सत्यार्थीजी ने ढेरों ऐसे गीत भी खोज निकाले जिनमें गुलामी की गहरी टीसती हुई पीड़ा है और अंग्रेज सरकार के अत्याचारों के प्रति

गुस्सा और तकलीफ भी। ऐसे गीत भी कम नहीं थे जिनमें गाँधी, नेहरू, नेताजी सुभाषचंद्र बोस और सरदार पटेल महानायकों की तरह थे और अंग्रेजों की गुलामी से दुःखी और आर्त जनता उम्मीद कर रही थी कि वे जल्दी ही अपनी चमत्कारी शक्तियों से गुलामी के काले

अंधकार को चीर देंगे। पर इससे भी गहरी और सच्ची भावना थी भगत सिंह के प्रति, जो क्रांतिकारियों के सिरमौर थे और अंग्रेज भी कहीं-न-कहीं उनसे आतंकित रहते थे। बल्कि एक गीत तो ऐसा भी है जिसमें भगत सिंह को फाँसी देने की अंग्रेजों की हिम्मत नहीं पड़ रही और अंतिम वक्त में भगत सिंह के भीतर से देशभक्ति की भावनाओं का ज्वार फूट पड़ा है—

दुष्ट मुएँ, मोरे पल-पल होते अँवार
क्यों डरो डार गले फाँसी?
सूधा सूरा स्वर्ग को जाऊँ
धरम राय को बिथा सुनाऊँ,
और हर से माँग भगत सिंह को लाऊँ
भारत को हजार,
क्यों डरो डार गले फाँसी?

दूसरी ओर भूख, अकाल और ठेकेदारी प्रथा के कष्टों और जमींदारों के उत्पीड़न को प्रकट करने वाले भी तमाम गीत थे। सत्यार्थीजी को ऐसा ही एक करुण गोंड लोक गीत बालाघाट जिले में बरासिवनी से प्राप्त हुआ। इस गीत में गिट्टी तोड़ती स्त्री का दर्द मानो आँसुओं की जलधारा के रूप में बह आया है और सुनने वाले को बार-बार स्तब्ध करता है। सत्यार्थीजी द्वारा किए गए इस लोक गीत का अनुवाद पढ़कर लगेगा, जैसे हम हाल-फिलहाल की कोई कविता पढ़ रहे हों—

अंग पर अँगिया नहीं
भूखी-प्यासी मैं गिट्टी तोड़ती हूँ...
ओ, माँ, मैं कब तक गिट्टी तोड़ती रहूँ?
इस जीवन से मुझे घृणा हो गई है।
दुनिया गरम बिछौने पर सोती है, दीवाली का जाड़ा पड़ रहा है,
ओ माँ, थर-थर काँपती हुई मैं गिट्टी तोड़ती हूँ।
इस जंगल, पहाड़ में बसकर
जब पयाल बिछाकर हम सोते हैं—चार हाथ की गाती बाँधकर
गजब के जाड़े में नींद नहीं आती,
पयाल जलाकर हम रात भर जागते हैं।

कोई पत्थर-दिल शख्स ही होगा जिसकी आँखें इस गीत को पढ़ते समय भीग न जाएँ? इससे लोक गीतों की ताकत ही नहीं, उनका दस्तावेजी महत्त्व भी सामने आता है। इसलिए कि उनमें अपने समय और इतिहास की मार्मिक गूँजें समाई हैं।

बहरहाल इससे पता चलता है कि सत्यार्थीजी लोक गीतों के कोई निर्भाव संग्रहकर्ता नहीं रहे कि जो कुछ मिला, चट झोली में डाल लिया। वे अच्छे, सार्थक, भावपूर्ण और कालांकित लोक गीतों को न सिर्फ अलगाते रहे, बल्कि अपने लेखों में उनकी शक्ति, सौंदर्य और विशेषताओं को उन्होंने बार-बार रेखांकित ही किया। शायद यही वजह है कि मन की मौज में आकर शुरू किया गया लोक गीत-संग्रह का उनका काम स्वराज्य की लड़ाई का अटूट हिस्सा बनता चला गया। और उनके पीछे-पीछे चलने और उनसे प्रेरणा लेने वाले लोकसाधकों का पूरे देश में इतना बड़ा काफिला खड़ा हो गया कि देखते-ही-देखते देश के हर प्रांत, हर खंड में लोक साहित्य का यह आंदोलन छा गया। देश के विश्वविद्यालय, प्रबुद्ध जन और बुद्धिजीवी भी अब इसे गंभीरता से लेने लगे।

के.एम. मुंशी, वासुदेवशरण अग्रवाल, श्यामाचरण दुबे जैसे समाज चिंतकों और साहित्य मर्मज्ञों ने ही नहीं, वेरियर एल्विन और डब्ल्यू.जी. आर्चर जैसे अंतरराष्ट्रीय ख्याति के लोकचिंतकों ने भी बड़े आदर से सत्यार्थीजी के काम को याद किया और जगह-जगह उनके महत्त्व और उनकी अनोखी एवं कठिन साधना का उल्लेख किया।

राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री से सम्मानित

शायद इसीलिए देवेंद्र सत्यार्थी 20वीं शताब्दी के उन महाकाय व्यक्तित्वों में से हैं जिनके बीहड़ व्यक्तित्व और महाकाव्यात्मक अनुभवों से भरपूर दर्जनों रचनाओं से गुजरते हुए, हमें समूची 20वीं शताब्दी के साहित्य, इतिहास और एक नई पहचान के साथ सामने आते मामूली आदमी को देखने-समझने की 'नई आँख' मिलती है। आज जब सत्यार्थीजी नहीं हैं और सृजनात्मक साहित्य के साथ-साथ लोक साहित्य को अपना सर्वस्व देकर जा चुके हैं, तो यह कहे बगैर नहीं रहा जाता कि काश! सत्यार्थीजी जैसे सच्चे और संवेदनशील लेखकों को समझने की कुछ ज्यादा ईमानदार कोशिशें हमारे यहाँ होतीं! तब लोक साहित्य में झाँकती जनता की अपार ताकत हमारी पूँजी होती, और यह पूँजी दुनिया के किसी भी महादेश की पूँजी और सिक्कों की ताकत से छोटी नहीं है!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास व लोक संस्कृति साहित्य

–विजय कुमार

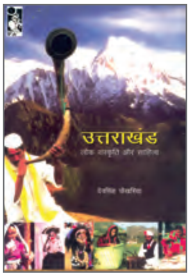

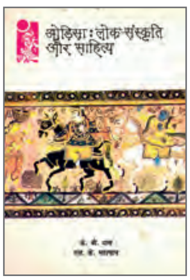

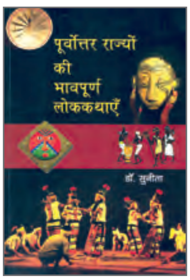

किसी भी देश की सभ्यता व संस्कृति की पहचान उस देश की लोक संस्कृति साहित्य से होती है। आम जनमानस के जीवन में हर समय, हर क्षण लोक संस्कृति की झलक दिखाई देती है। इसके उन्नयन के लिए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने ऐसी कई पुस्तकों को प्रकाशित कर महती भूमिका निभाई है। प्रारंभ में, इस पुस्तकमाला का उद्देश्य एक क्षेत्र के पाठकों को देश के अन्य क्षेत्रों की उस लोक संस्कृति और साहित्य से परिचित कराना था, जिसने उस क्षेत्र के लोगों को अलग सांस्कृतिक पहचान दी है। इस पुस्तकमाला की पुस्तकों में संबद्ध क्षेत्र के निवासियों, मिथक, पौराणिक कथाएँ, धर्म, रीति-रिवाज, परंपराएँ, मेले, तीज-त्योहार, संगीत, नृत्य, नाटक, कला और शिल्प, लोक साहित्य आदि का भी विवरण दिया जाता था। अब यह निर्णय लिया गया है कि इस पुस्तकमाला के संकुचित स्वरूप में परिवर्तन कर लोक साहित्य को और अधिक जीवंत रूप में प्रस्तुत किया जाए। लोक संस्कृति साहित्य को बढ़ावा देने के लिए न्यास अब तक लगभग 40 पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है।

असम के बरगीत पुस्तक के लेखक बापचंद्र महंत ने असम की तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर श्रीशंकर देव के अभूतपूर्व एकीकरण का परिचय दिया है। साथ ही, भक्ति परंपरा के महान दार्शनिक व कवि श्रीशंकर देव के कृतित्व और व्यक्तित्व पर व्यापक प्रकाश डाला है। श्रीशंकर देव ने बरगीतों के द्वारा उस समय के हिंदुओं और सीमांत आदिवासी, जाति व उपजातियों की आध्यामिक भावनाओं को राधा-कृष्ण के भक्तिपरक गीतों के माध्यम से एक सूत्र में पिरोने का काम किया है। असम में इन बरगीतों के गायकों ने 15वीं शताब्दी में लगभग चार वर्षों तक ऐसी भक्तिधारा प्रवाहित की कि उसकी तुलना हिंदी के 'अष्टछाप कवियों' से या बंगला के 'बाउलों' से भी की जा सकती है। इन बरगीतों में राधा-कृष्ण की लीलाओं को हिंदी भाषा में व्याख्या सहित वर्णित किया गया है।

ओड़िया समाज के लोककंठ में व्याप्त, किंतु विलुप्त होती पारंपरिक धरोहर जैसी लोककथाओं का संकलन, अरण्य स्वर; सत्यार्थीजी के विविध पक्षों पर प्रकाश डालती, देवेंद्र सत्यार्थी : लोक निबंध; पूर्वोत्तर भारत की उत्तरी सीमा पर फैली लोमहर्षक पहाड़ी परिदृश्य में गूँजती पौराणिक कथाओं, किंवदंतियों तथा लोककथाओं में जीवन की विचित्रता, रहस्य, अस्तित्व का आनंद एवं उसके लिए संघर्ष, मौलिक भावनाओं की परस्पर प्रक्रिया का अनूठा संकलन, 'नील गगन के प्रांगण से'; संकलित लोककथाओं की रोचक शैली में लिखी गई पुस्तक, 'कहानियाँ कहावतों की'; कुल्लवी बोली में देवी-देवताओं, मेले, त्योहार, सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन पर आधारित, 'काति म्हीने री चानणिए : कुल्लवी लोक गीतों का संग्रह'; लोकचेतना, गाथा में गीतों और लोककथाओं का कलेवर ग्रहण किए विभिन्न अश्व कथाओं का संग्रह, 'तुरंगम'; पर्वतीय व वन्य क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातीय

लोगों के धर्म, सामाजिक संस्थाओं, पोशाकों और भाषाओं पर लोककथाओं का संकलन, 'दुनिया जब नई नई थी'; प्रख्यात कथाकार मिथिलेश्वर द्वारा पुनर्रचित भोजपुरी लोककथाओं का संकलन, 'भोजपुरी लोककथा'; बुंदेलखंड की श्रेष्ठ लोककथाओं और लोक परंपराओं का परिचय देती, 'पिरथवी भारी है'; भारत के विभिन्न प्रांतों और भिन्न-भिन्न भाषाओं-उपभाषाओं में प्रचलित लोककथाओं का संकलन, 'भारत की लोककथाएँ'; भारत की विभिन्न जनजातियों की रोचक लोककथाओं को प्रस्तुत करती, 'भारत के आदिवासी क्षेत्रों की लोककथाएँ'; संताली जनजीवन की लोक रुचि के रक्षणार्थ, सामान्य भाषा में प्रस्तुत जनजातीय जनपद के लोककंठ में व्याप्त अनूठी लोककथाओं का मनोहारी संकलन, 'संताली लोककथाएँ'; तथा सिंधु लोक जीवन, मान्यताओं, रहन-सहन, परंपराओं की स्मृतियों को जीवंत बनाती पुस्तक, 'सिंध की लोककथाएँ' आदि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से प्रकाशित हैं।

न्यास ने लोक संस्कृति और साहित्य एवं लोककथाओं पर राज्यवार पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। आंध्र प्रदेश की लोक संस्कृति और साहित्य की जानकारी देने वाली पुस्तक, 'आंध्र प्रदेश : लोक संस्कृति और साहित्य'; उत्तराखंड की लोक संस्कृति को प्रस्तुत करती, 'उत्तराखंड : लोक संस्कृति और साहित्य'; वहाँ की लोककथाओं को संजोए, 'उत्तराखंड की लोककथाएँ'; ओड़िया समाज के जीवनयापन का वस्तुपरक दस्तावेज, 'ओड़िसा : लोक संस्कृति और साहित्य'; वहाँ की लोककथाओं का संग्रह, 'ओड़िसा की लोककथाएँ'; केरल की अनंत परंपरा और संस्कृति का सजीव विवरण कृति, 'केरल : लोक संस्कृति और साहित्य'; गुजरात की सभ्यता और संस्कृति, भौगोलिक परिवेश, आहार-व्यवहार, रीति-नीति और लोक परंपराओं का परिचय देती, 'गुजरात : लोक संस्कृति और साहित्य'; सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न प्रदेश तमिलनाडु के लोगों के आचार-विचार, धर्म-विवरण, रीति-रिवाजों पर आधारित पुस्तक, 'तमिलनाडु : लोक संस्कृति और साहित्य'; अरुणाचल प्रदेश, असम, मिजोरम, मेघालय, नगालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, मणिपुर क्षेत्रों के रचनाकारों की रचनाओं का संग्रह, 'पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ'; इसके अलावा एक और रचना संग्रह, 'पूर्वोत्तर : आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाएँ'; सात बहनों के नाम से जाने जाने वाले सात पूर्वोत्तर राज्यों की लोककथाओं का वर्णन, 'पूर्वोत्तर राज्यों की भावपूर्ण लोककथाएँ'; भतरी बस्तर अंचल की व्यापक उपयोग वाली बोली में 14 दुर्लभ कहानियों का अनुवाद संग्रह, 'बस्तर की भतरी लोककथाएँ'; विलुप्ति के कगार पर पहुँच चुकी नौ लोक बोलियों की कथाओं का संकलन, 'बस्तर की लोककथाएँ'; वहाँ की जनजातियों में संगीत और नृत्य परंपराओं को दर्शन कराती, 'बस्तर का आदिवासी एवं लोक संगीत'; बंगाल के रीति-रिवाज, परंपरा, मेले, पर्व, मौखिक साहित्य, लोक साहित्य की संक्षिप्त झाँकी, 'बंगाल : लोक संस्कृति और साहित्य'; बिहार की भोजपुरी, मैथिली, मगही, तिरहुत और अंग संस्कृतियों के लोकजीवन, गीत-संगीत, मान्यताओं, इतिहास, खान-पान की जानकारी देती, 'बिहार : इंद्रधनुषी लोकरंग'; वहाँ की चार लोक भाषाओं भोजपुरी, मैथिली, मगही व अंगिका में लोककथाओं का संग्रह, 'बिहार की लोककथाएँ'; राजस्थान की लोक संस्कृति, वहाँ के धर्म, अंधविश्वास, पर्व, त्योहार की जानकारी देती, 'राजस्थान : लोक संस्कृति और साहित्य'; हरियाणा लोक साहित्य में प्रचलित पहेलियों पर पुस्तक, 'सावन सूखे, ज्येष्ठ हरे'; हिमाचल की लोककला और आस्थाओं से परिचय कराती, 'हिमाचल की लोककलाएँ और आस्थाएँ'; वहाँ की लोककथा का एहसास कराती, 'हिमाचल प्रदेश की लोककथाएँ'; वहाँ के पारंपरिक लोक गीतों का दस्तावेज, 'हिमाचल के लोक गीत'; साथ ही प्रदेश के लोक जीवन में व्याप्त तरलता, जीवंतता, लोककथाओं व लोक नृत्यों से रू-ब-रू कराती पुस्तक, 'हिमाचल प्रदेश : लोक संस्कृति और साहित्य' आदि पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं।

इसके अलावा प्राकृतिक इतिहास से पिरोई हुई जंतु कथाओं को संजोए हुए पुस्तक, 'जब दरियाई हाथी भी झबरा'; अफ्रीकी पुराकथाओं की लुभावनी जंतु कथाओं पर आधारित पुस्तक, 'जब शेर भी उड़ान भरता था' और जापान की लोककथाओं को प्रस्तुत करती पुस्तक, 'जापान की लोककथाएँ' भी प्रकाशित की गई हैं।

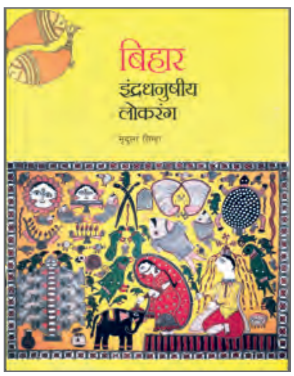

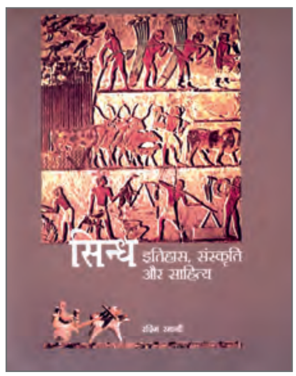

('पुस्तक संस्कृति' के संपादकीय विभाग से संबद्ध)

शोधार्थियों को विज्ञान लेखक बनने का एक सुनहरा 'अवसर'

डॉ. मनीष मोहन गोरे

शिक्षा : एम.एससी. (वनस्पति विज्ञान), पीएच. डी. (वनस्पति विज्ञान), पत्रकारिता एवं जनसंचार में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा।

लेखन : 1995 से विज्ञान लेखन और संचार में सक्रिय, प्रिंट मीडिया के अलावा रेडियो, टीवी और सोशल मीडिया के लिए भी विज्ञान लेखन व संचार।

संप्रति : विज्ञान लोकप्रियकरण को समर्पित डीएसटी के राष्ट्रीय संस्थान 'विज्ञान प्रसार' के प्रकाशन अनुभाग में साल 2007 से सेवारत।

संपर्क : मोबाइल : 9999275292

ईमेल : mmgore@vigyanprasar.gov.in

विज्ञान लेखन का कार्य विज्ञान संचार के व्यापक उद्देश्य का एक अहम हिस्सा होता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़े मुद्दों पर लेखन से इस साहित्य के पाठकों को विज्ञान की जानकारी तो मिलती ही है, इसके अलावा पाठक की सोच में भी बदलाव आता है। उसका नजरिया तर्कसंगत और सूझ-बूझ भरा हो जाता है। इस तरह के नजरिए को 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' कहते हैं। न केवल बच्चों और युवाओं, बल्कि समाज के हर वर्ग-हर तबके को विज्ञान की एक न्यूनतम समझ होनी चाहिए, तभी उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होगा और वे अपने दैनिक जीवन से जुड़े फैसलों में तर्कसंगत सोच अपनाएँगे।

विज्ञान में शोध के अलावा इस ज्ञान का लोकप्रियकरण समान रूप से जरूरी है और यह बात भारत ही नहीं पूरी दुनिया के लिए प्रासंगिक है। एक वैज्ञानिक अपने महत्त्वपूर्ण शोध के द्वारा समाज, देश, पर्यावरण और मानवता को लाभ पहुँचाता है तो वहीं विज्ञान संचारक या लेखक भी ज्ञान-विज्ञान की जानकारी सरल-सहज भाषा और समझ में आने योग्य शैली में बताता व लिखता है। विज्ञान संचार या लेखन की आवश्यकता और इससे आमजन को मिलने वाली प्रेरणा किसी मायने में शोध से कम नहीं। अतीत में अगर हम मुड़कर देखें तो यह पाएँगे कि भारत के वैज्ञानिकों में अनेक ने अपने अध्ययन व शोध के साथ-साथ ज्ञान की इस विशेष धारा को जनसामान्य तक ले जाने के बहुत उर्वर प्रयत्न किए हैं। इस दिशा में, सी.वी. रमन, मेघनाद साहा, एस.एन. बोस, यशपाल और जयंत विष्णु नार्लीकर जैसे वैज्ञानिकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान समय में वैज्ञानिक समुदाय के लोग प्रायः विज्ञान संचार में योगदान नहीं देते। प्रयोगशाला, संस्थान और सरकार की आचार संहिता में उनमें चल रहे शोध की

जानकारी साझा करने से पाबंदी रहती है। इसलिए वे सामान्य विज्ञान और प्राकृतिक घटनाओं पर अपनी बात कहने या लिखने से कतराते हैं। लेकिन यदि हार्डकोर वैज्ञानिक विज्ञान संचार या लेखन करें तो वे प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत कर सकते हैं। इस कथन का यह आशय बिल्कुल नहीं कि वैज्ञानिक समाज से अलग जो लोग विज्ञान संचार या लेखन में काम कर रहे हैं, उनकी रचनाओं या वक्तव्य में विज्ञान की प्रामाणिक जानकारी संदिग्ध है। कहने का अर्थ सिर्फ इतना है कि एक वैज्ञानिक कुछ अधिक प्रमाण और अंतर्दृष्टियों के साथ अपने विचार रखने में समर्थ हो सकता है क्योंकि वह शोध में संलग्न रहता है। वहीं दूसरी ओर एक सामान्य विज्ञान लेखक या संचारक अपनी शिक्षा के दौरान विज्ञान के विशेष विषय का अध्ययन करता है और उसके बाद उससे विषय छूट जाता है। लेकिन एक आदर्श विज्ञान लेखक कभी अपना अध्ययन छोड़ता ही नहीं। वह सदा एक विद्यार्थी भाव से अध्ययन करता रहता है क्योंकि अपने पाठकों को विज्ञान की अद्यतन जानकारी उसे साझा करते रहना होता है।

विज्ञान के युवा शोधार्थियों और पोस्ट डॉक्टोरल के विद्यार्थियों को आरंभ से विज्ञान लेखन और संचार के विशेष कौशल में निपुण बनाने के लिए भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) ने एक अभिनव योजना का आरंभ किया है। इसमें उन्हें अपने शोध विषयवस्तु को पॉपुलर साइंस आर्टिकल फार्मेट में अभिव्यक्त करना है। 'अवसर' नामक योजना में शोधार्थी विज्ञान संचार विधा से जुड़ेंगे और अपने वैज्ञानिक शोध की जटिल अवधारणाओं को बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्त करेंगे। इस योजना के द्वारा आने वाले समय में वैज्ञानिक समुदाय विज्ञान संचार की भूमिका का भी कुशलता से निर्वहन करेगा।

विज्ञान संचार और लेखन के उद्देश्य

विज्ञान संचार वास्तव में वैज्ञानिक जागरुकता का एक अनौपचारिक स्वरूप होता है। शिक्षा संस्थान विज्ञान की औपचारिक शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान करते हैं जबकि विज्ञान संचार के अंतर्गत विज्ञान की सामान्य जानकारी अनौपचारिक तौर पर जनसामान्य को दी जाती है। विज्ञान लेखन दरअसल विज्ञान संचार का एक स्वरूप है। इसलिए विज्ञान संचार और विज्ञान लेखन के उद्देश्य समान होते हैं। इनके मुख्य रूप से तीन उद्देश्य होते हैं। पहला आमजन को देश-दुनिया में विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़ी प्रगति की जानकारी सरल-सहज भाषा और शब्दावली में देना, दूसरा लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण या तर्कसंगत नजरिए का विकास करना तथा तीसरा समाज से निर्मूल परंपराओं व अंधविश्वास का निर्मूलन करना। यहाँ पर इस बात का उल्लेख किया जाना आवश्यक हो जाता है कि भारत दुनिया का पहला देश है जिसकी संसद ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय विज्ञान नीति (1958) लागू की थी। उसके बाद विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचार को लेकर अनेक नीतियों को क्रियान्वित किया गया तथा इन सबमें विज्ञान के संचार व लोकप्रियकरण पर विशेष बल दिया गया है। हमारे देश में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद (एन.सी.एस.टी.सी.), डी.एस.टी., सी.एस.आई.आर.-निस्केयर, विज्ञान प्रसार (डी.एस.टी.), राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अतिरिक्त देश के लगभग सभी राज्यों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी परिषदें हैं, जो विज्ञान संचार की विविध गतिविधियों में संलग्न हैं। प्रिंट, ऑडियो-वीडियो, डिजिटल, सोशल मीडिया, लोक कला माध्यम, जनसंपर्क मीडिया जैसे अनेक माध्यमों के जरिए विज्ञान संचार को अंजाम दिया जाता है। इस विशिष्ट संचार के अनेक स्वरूप और विधाएँ हैं।

'अवसर' योजना के बारे में

अवसर यानी कि 'शोध की अभिव्यक्ति के लिए लेखन कौशल को प्रोत्साहन' (AWSAR – Augmenting Writing Skills for Articulating Research)। इस योजना के अंतर्गत डीएसटी ने वर्ष 2018 से राष्ट्रीय स्तर की एक वार्षिक प्रतियोगिता के आयोजन की घोषणा की है। इसमें विज्ञान संचार को बढ़ावा देने और नए विज्ञान संचारकों को तैयार करने के लिए विज्ञान व प्रौद्योगिकी की विविध धाराओं में पीएच.डी. या पोस्ट डॉक्टोरल कर रहे शोधार्थियों से उनके शोध विषयों पर विज्ञान आलेख आमंत्रित किए गए हैं। चूँकि पीएच.डी. या पोस्ट डॉक्टोरल के स्कॉलर हार्डकोर साइंस के विद्यार्थी होते हैं और विज्ञान संचार एवं लेखन से वे सर्वथा अनजान रहते हैं इसलिए उन्हें इस विधा से परिचित कराने और विज्ञान संचार का वातावरण विकसित करने के उद्देश्य से अवसर प्रतियोगिता में प्रविष्टि भेजने से पहले देश के अनेक अंचलों में ओरिएंटेशन कार्यशालाओं के आयोजन इस वर्ष किए गए हैं। ऐसी कार्यशालाएँ प्रत्येक वर्ष आयोजित की जाएँगी। इन कार्यशालाओं में प्रतिभागी शोधार्थियों को विज्ञान लेखन के सिद्धांतों, मापदंडों, बारीकियों, डू'ज और डोंट आदि से रू-ब-रू किया जाता है।

अवसर योजना के आरंभ के पहले वर्ष में देहरादून, कोलकाता, चंडीगढ़ और चेन्नई जैसे देश के चार महानगरों में ओरिएंटेशन कार्यशालाएँ आयोजित की जा चुकी हैं तथा इन सभी कार्यशालाओं में कुल 512 प्रतिभागियों (पीएच.डी. और पोस्ट डॉक फेलो दोनों श्रेणियों के प्रतिभागी) ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। इसके अतिरिक्त अवसर योजना के पहले वर्ष में डीएसटी को कुल 2617 प्रविष्टियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।

डीएसटी की अवसर योजना संबंधी प्रतियोगिता का विज्ञापन हर वर्ष देश के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक तौर पर प्रकाशित किया जाएगा। इस वार्षिक प्रतियोगिता में शामिल प्रतियोगियों में से चयनित सर्वश्रेष्ठ विज्ञान लेखों को डीएसटी द्वारा पुरस्कृत किया जाएगा। प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन डीएसटी द्वारा गठित वैज्ञानिकों और विज्ञान संचारकों का एक पैनल करेगा। पीएच.डी.

श्रेणी के अंतर्गत हर साल कुल 103 सर्वश्रेष्ठ प्रविष्टियों को पुरस्कृत किया जाएगा। पहले पुरस्कार में रुपये एक लाख, दूसरे में 50,000 रुपये और तीसरे में 25,000 रुपये की धनराशियाँ प्रदान की जाएगी। इसके अलावा 100 और चयनित प्रविष्टियों के प्रत्येक विजेता को 10,000 रुपये की धनराशि दी जाएगी। पोस्ट डॉक्टोरल श्रेणी के अंतर्गत एक उत्कृष्ट विज्ञान लेख को एक लाख रुपये और 20 अतिरिक्त चयनित प्रविष्टियों में प्रत्येक को 10,000 रुपये की धनराशि प्रदान की जाएगी। इन सभी चयनित पुरस्कार विजेताओं को प्रशस्ति पत्र दिया जाएगा और इनके विज्ञान लेखों को प्रकाशित भी किया जाएगा।

अवसर योजना (2018) से जुड़ी कुछ मुख्य बातें–

कुल पंजीकरण	4116
पीएच.डी. प्रतिभागियों का पंजीकरण	3666
पोस्ट डॉक्टोरल स्कॉलर प्रतिभागियों का पंजीकरण	450
कुल प्राप्त विज्ञान लेख	2617
पीएच.डी. प्रतिभागियों से प्राप्त विज्ञान लेख	2167
पोस्ट डॉक्टोरल स्कॉलर प्रतिभागियों से प्राप्त विज्ञान लेख	450

अवसर कार्यशालाएँ	**प्रतिभागियों की संख्या**
देहरादून कार्यशाला	112
कोलकाता कार्यशाला	120
चेन्नई कार्यशाला	105
चंडीगढ़ कार्यशाला	174

विज्ञान की वे अध्ययन शाखाएँ जिनसे संबंधित लेख प्राप्त हुए	**प्राप्त लेख**
कृषि विज्ञान	348
रसायन विज्ञान	232
पृथ्वी एवं वायुमंडल विज्ञान	336
इंजीनियरिंग	310
स्वास्थ्य विज्ञान	862
जीव विज्ञान	236
गणित	17
भौतिक विज्ञान	276

अवसर योजना के बारे में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव प्रो. आशुतोष शर्मा की टिप्पणी यहाँ उल्लेखनीय है। उनका मत है कि विज्ञान संचार वैज्ञानिकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि है और वैज्ञानिक अनुसंधान के समांतर इसकी अहम भूमिका होती है। हमारे देश में आमजन के बीच विज्ञान को लोकप्रिय बनाने को अभी तक बहुत कम महत्त्व दिया गया है और जो लोग इस कार्य में जुटे हैं, उन्हें उचित पहचान तथा मान्यता नहीं मिलती। वे आगे कहते हैं कि इस मौजूदा परिदृश्य को बदलने के लिए हम वैज्ञानिकों का एक ऐसा समूह बनाना चाहते हैं जो अपने शोध कार्यों को लोक विज्ञान लेख में रूपांतरित कर सकें। देखा जाता है कि भारत में बहुत कम संख्या में विज्ञान लेखक और विज्ञान पत्रकार हैं। यहाँ के समाचार पत्र भारतीय प्रयोगशालाओं में चल रहे शोध पर कम और दुनिया के दूसरे देशों की विज्ञान खबरें अधिक प्रकाशित करते हैं। भारत के ऐसे अनेक वैज्ञानिकों को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ जिनके समतुल्य शोध विदेशों में प्रकाशित होते हैं। प्रो. शर्मा इस बात पर बल देते हुए कहते हैं कि 'अवसर' जैसी योजनाएँ युवा वैज्ञानिकों को आम जीवन की चुनौतियों और समाज को व्यापक लाभ पहुँचाने वाले वैज्ञानिक शोध और प्रौद्योगिकीय विकास की ओर उन्मुख करेंगी। इस पहल से देश में चल रहे विज्ञान संचार और विज्ञान लेखन के अभियान में किसी प्रकार का दोहराव नहीं होगा, बल्कि विज्ञान संचार के ये दोनों मॉडल समांतर रूप से चलते रहेंगे।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की यह अनोखी पहल युवा शोधार्थियों को अपने शोध से जुड़ी बातों और अनुभवों को जनसामान्य से साझा करने का एक खास अवसर तो देती है, साथ ही वे एक नए परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक और विज्ञान संचारक समुदाय से संवाद भी कर सकेंगे। इस तरह उभरकर आए युवा वैज्ञानिक भविष्य में बतौर वैज्ञानिक अनुसंधान तो करेंगे, इसके साथ ही वे एक निपुण विज्ञान संचारक और विज्ञान लेखक भी बन पाएँगे।

'अवसर' योजना का महत्त्व

हमारे देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में विगत दो दशकों में आशातीत उपलब्धियाँ हासिल हुई हैं। मगर दुर्भाग्य है कि इनसे जुड़ी जानकारी और सफल गाथाएँ कुछ एक प्रयोगशालाओं में और पीयर रिव्यूड जर्नलों में सिमटकर रह जाती हैं। इन्हें वैज्ञानिक समुदाय के लोग ही समझ पाते हैं और आम आदमी इस महत्त्वपूर्ण जानकारी से वंचित रह जाता है। विज्ञान के इन प्रयोगों और आविष्कारों की जानकारी को सरल सुबोध भाषा में सामान्य लोगों तक पहुँचाना जरूरी है। डीएसटी की अवसर योजना तथा इनसे उभरकर भविष्य का वैज्ञानिक समुदाय इस दिशा में सतत प्रयत्नशील रहेंगे और इस जरूरत को पूरा करने में समर्थ होंगे।

अवसर योजना का विचार केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा पृथ्वी विज्ञान मंत्री डॉ. हर्षवर्धन के मन में उपजा, जिसे डीएसटी सचिव प्रो. आशुतोष शर्मा के कुशल मार्गदर्शन में राष्ट्रीय विज्ञान प्रौद्योगिकी संचार परिषद (एन.सी.एस.टी.सी.) और विज्ञान प्रसार द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है। इस योजना के संबंध में अधिक जानकारी वेबसाइट www.awsar-dst.in पर मिल सकती है। ये पुरस्कार प्रतिवर्ष 28 फरवरी को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के अवसर पर प्रदान किए जाएँगे। देश के युवा वैज्ञानिकों को सरकार की इस अनोखी योजना में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना चाहिए।

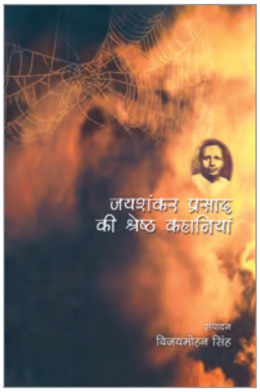

समीक्षक : **एम. ओबैद**

संपादन : **विजयमोहन सिंह**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 133

मूल्य : रु. 75/-

जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ

कालजयी रचना के लिए विख्यात जयशंकर प्रसाद ने साहित्य की दोनों ही विधाओं में लेखन किया। प्रसाद छायावाद के सशक्त स्तंभ माने जाते हैं। वे एक तरफ जहाँ कविता के क्षेत्र में आदर्शवादी तथा छायावादी माने जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ कहानी के क्षेत्र में यथार्थवादी दिखते हैं। प्रसाद के शिल्प प्रयोग का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपनी कहानियों में जिस तरह ग्रामीण यथार्थ का चित्रण किया, वैसी कल्पना करना उस समय संभव ही नहीं था। उनकी हर कहानियों में संभवतः दार्शनिक तत्त्व अवश्य दिखाई देते हैं। प्रसाद का लेखन परवर्ती लेखकों के लिए निस्संदेह प्रेरणादायी रहा है।

रचना कौशल के सम्राट जयशंकर प्रसाद ने कविताओं, उपन्यासों और नाटकों के अलावा सत्तर कहानियाँ लिखीं। इन कहानियों को पाँच संग्रहों में एकत्रित किया गया है। ये कहानी-संग्रह- 'छाया', 'आँधी', 'आकाशदीप', 'प्रतिध्वनि' और 'इंद्रजाल' हैं। उनकी 17 श्रेष्ठ कहानियों को श्री विजयमोहन सिंह ने एक पुस्तक में संगृहीत किया है। इस पुस्तक का नाम 'जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ' है। प्रसाद की कहानी 'ग्राम' को साधारणतः हिंदी की पहली आधुनिक कहानी माना जाता है इसलिए संभवतः श्री सिंह भूमिका के बाद अपनी इस पुस्तक का आरंभ 'ग्राम' से ही करते हैं। इस कहानी में ग्रामीण यथार्थ का वह पक्ष उजागर किया गया है जिसकी कल्पना करना उस समय काफी कठिन था। प्रसाद की सूक्ष्म दृष्टि ने कारुणिकता के साथ महाजनी सभ्यता के अमानवीय पक्ष को प्रस्तुत किया है। इसके अलावा इस कहानी में अंग्रेज़ियत का दंभ भरने वाले भारतीय ज़मींदारों पर भी गहरा व्यंग किया गया है। कहानी के आरंभ में ही प्रसाद ज़मींदार मोहनलाल की वेश-भूषा पर गहरा व्यंग करते हुए लिखते हैं, 'बूट चढ़ाए, हंटिंग कोट, धानी रंग का साफा, अंग्रेज़ी, हिंदुस्तानी का महासम्मेलन बाबू साहब के अंग पर दिखाई पड़ रहा है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट-उसकी आभा को बढ़ा रहे हैं।' (पृष्ठ : 01)

साहित्य की सभी विधाओं में समान प्रतिभा रखने वाले प्रसाद की सबसे चर्चित कहानी 'आकाश दीप' है जो बहुआयामी है। इस कहानी की भूमिका में संपादक लिखते हैं-इसकी व्याख्या कई स्तरों पर की जा सकती है, एक ओर यह प्रसाद का इतिहासवेत्ता रूप प्रस्तुत करती है, जिससे पता चलता है कि हज़ारों वर्ष पूर्व भारतीय-वाणिज्य, सभ्यता और संस्कृति जावा, सुमात्रा, बोर्नियों जैसे दूर स्थित देशों तथा द्वीपों में कैसे पहुँची होगी, वहीं दूसरी ओर यह प्रसाद के प्रिय विषय प्रेम की भी एक विलक्षण व्याख्या प्रस्तुत करती है।

युगप्रवर्तक लेखक के रूप में विख्यात प्रसाद की कहानी 'ममता' को भी संपादक ने इस पुस्तक में शामिल किया है। ममता भी कहानी आकाशदीप की तरह विधेयात्मक अस्वीकार की कहानी है। एक तरफ आकाशदीप में जहाँ चम्पा प्रेम तथा तृष्णा को अस्वीकार करती है, वहीं ममता में समृद्धि तथा वैभव का अस्वीकरण है। ममता मध्यकालीन इतिहास पर आधारित कहानी है। 'ममता' रोहतास दुर्गपति के मंत्री की विधवा बेटी है। ममता को प्राप्त करने के लिए शेरशाह स्वर्ण तथा एश्वर्य का लालच देता है। ममता इसे अस्वीकार कर देती है। ममता दुर्गपति पिता से कहती है, "तो क्या आपने मलेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया? पिताजी यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिए पिताजी! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे?" (पृष्ठ-15)

प्रसाद के शिल्प प्रयोग को उनकी कहानी 'स्वर्ग के खंडहर में' में भलीभाँति देखा जा सकता है। उनके शिल्प प्रयोग का यह अद्‌भुत उदाहरण है। आज तकनीक के द्वारा पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का प्रयास किया जा रहा है। स्वर्ग बनाने की प्रक्रिया में यह कारागर में परिवर्तित हो जाता है। इस कहानी के द्वारा प्रसाद अधिक भोगवाद के संदर्भ में इसके अंत होने का अवसादपूर्ण संकेत देते हैं। इसमें उन्होंने इसी मानव निर्मित स्वर्ग का विरोध दिखाया है। लज्जा कहती है, "पृथ्वी को केवल वसुंधरा होकर मानव-जाति के लिए जीने दो, अपनी आकांक्षा के कल्पित स्वर्ग के लिए, क्षुद्र स्वार्थ के लिए इस महती को, इस धरणी को नरक न बनाओ, जिसमें देवता बनने के प्रलोभन में पड़कर मनुष्य राक्षस न बन जाए, शेख।" (पृष्ठ- 28)

पुस्तक 'जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ' में शामिल कहानी समुद्र-संतरण में भी ऐश्वर्य तथा वैभव के विपरीत प्रेमभाव दिखाई देता है। इस कहानी में धीवर बाला राजकुमार सुदर्शन से नाव पर आने को कहती है, "आओगे, लहरों को चीरते हुए सुदर्शन ने पूछा- कहाँ चलोगी? पृथ्वी से दूर जल-राज्य में; जहाँ कठोरता नहीं, केवल शीतल, कोमल और तरल आलिंगन है; प्रवंचना नहीं, सीधा

आत्मविश्वास है; वैभव नहीं, सरल सौंदर्य है। धीवर बाला ने हाथ पकड़कर सुदर्शन को नाव पर खींच लिया। दोनों हँसने लगे। चंद्रमा और जलनिधि भी।"

मानवीय करुणा को अपनी कृति में संजोने वाले प्रसाद की कहानी 'चूड़ीवाली' को भी इस पुस्तक में समाविष्ट किया गया है। पुस्तक के संपादक ने इस कहानी के संदर्भ में भूमिका में लिखा है, 'चूड़ीवाली' व्यक्तिगत संबंधों के माधुर्य की कहानी है किंतु यहाँ भी प्रसाद का जीवन दर्शन केंद्रीय रूप में उपस्थित है—कहानी की शुरुआत रूप लिप्सा, वासना और वैभव के प्रति आकर्षण से होती है, किंतु अंत में वही त्याग, वैभव का विनाश तथा एक अत्यंत सात्विक, सामान्य तथा प्रायः निर्धन विराग! चूड़ीवाली विलासिनी नगर की प्रसिद्ध नर्तकी की कन्या थी। वह ज़मींदार के रूप, यौवन तथा वैभव से आकर्षित हो जाती है। विलासिनी को "कुलवधू बनने की अभिलाषा हृदय में और दांपत्य-सुख का स्वर्गीय स्वप्न उसकी आँखों में समाया था.., परंतु बहूजी को अपने प्रणय के एकाधिपत्य पर पूर्ण विश्वास था। वह निष्क्रिय प्रतिरोध करने लगीं। राजयक्ष्मा के भयानक आक्रमण से वह घुलने लगीं..चल बसी।" उधर मुकदमे में सब कुछ समाप्त होने के बाद ज़मींदार भटकने वाले व्यक्ति बन जाते हैं। और चूड़ीवाली विलासिनी भी अपने प्रेमी से वंचित होकर तापस बाला बन जाती है और पाथिकों तथा यात्रियों की सेवा में लग जाती है।

हिंदी के पहले दार्शनिक कथाकार प्रसाद की सभी कहानियाँ उद्देश्यपरक होती हैं लेकिन ये उद्‌देश्य हमेशा स्थूल नहीं होते हैं। 'आँधी' इन्हीं कहानियों में से एक है। इस पुस्तक में शामिल आँधी घुमंतू जातियों पर केंद्रित है। संपादक इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं, "इस कहानी में इस घुमंतू के लिए 'सभ्य मानव समाज के विद्रोही' शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। मानो यह जाति मानव समाज द्वारा निर्मित नियमों और प्रतिबंधों के प्रति आदि विद्रोही है। स्वतंत्र तथा स्वछंद विचरना उनका स्वभाव है। आँधी कहानी ऐसी ही एक स्वछंद विचरण करने वाले जत्थे की युवती लैला, रामेश्वर नाम के एक व्यक्ति से प्रेम करती है।"

यथार्थवादी उपन्यासों और कहानियों की रचना करने वाले प्रसाद ने 'मधुआ' जैसी कहानी की रचना की जिसके पात्र निम्नवर्ग के सर्वहारा श्रेणी से हैं। प्रसाद ने इस कहानी का पात्र छोटे बच्चे को बनाया है। छोटे बच्चे या बालक को कहानी का पात्र बनाने का प्रसाद का उद्देश्य यही माना जाता है कि बच्चे मासूम होते हैं इसलिए जीवन का सच सबसे अधिक उन्हीं के माध्यम से व्यक्त होता है और इसलिए वे पाप करने वाले व्यक्ति को भी पवित्र मनुष्य बना देते हैं। मधुआ कहानी में भी कुछ ऐसा ही होता है। इस कहानी में एक मनुष्य शराब पीने के लिए अपना सब कुछ गँवा देता है। जब सारा धन उसका समाप्त हो जाता है तो वह बालक मधुआ के संपर्क में आता है। इसके बाद वह केवल शराब ही नहीं छोड़ देता बल्कि श्रम करके जीविका अर्जित करने लगता है। बालक के लिए भोजन खरीदने के लिए शराबी गली के बाहर भागा। उसके साथ में एक रुपया था। बाहर आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाय..दो आने की पकौड़ी...नहीं...नहीं, आलू-मटर...अच्छा, न सही, चारों आने का मांस ही ले लूँगा, पर यह छोकरा! इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खाएगा और क्या खाएगा। वह शराब का अद्धा लेना भूल कर मिठाई-पूड़ी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी नहीं भूला। पूरा एक रुपये का सामान लेकर वह दुकान से हटा।" (पृष्ठ संख्या-72)।

'घीसू' कहानी में पात्र 'घीसू' बालक तो नहीं है लेकिन शराबी है। यह 'बिंदो' नामक विधवा युवती के संपर्क में आकर शराब छोड़ देता है।"..दोपहर को थैली गोविन्दराम के घाट पर रखकर घीसू चुपचाप बैठा रहा। गोविन्दराम की बूटी बन रही थी। उन्होंने कहा—"घीसू, आज बूटी लोगे?" घीसू कुछ न बोला। गोविन्दराम ने उसका उतरा हुआ मुँह देखकर कहा—"क्या कहें घीसू! आज तुम उदास क्यों हो?" (पृष्ठ संख्या 79)

प्रसाद की इसी तरह की कहानियों में संभवतः 'छोटा जादूगर' अधिक वस्तुवादी और सशक्त कहानी है। इस कहानी में छोटा जादूगर बालक है जो भूख मिटाने के लिए भीख नहीं माँगता बल्कि छोटा मोटा करतव दिखाकर अपनी बूढ़ी और बीमार माँ की सेवा करता है। इस कहानी में स्वाभिमान को अधिक सशक्त तरीके से दिखाया गया है जहाँ बालक भीख न माँगकर श्रम करता है और अपनी माँ की देख-रेख करता है। "...तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती!" (पृष्ठ संख्या 99)

'पुरस्कार' एक ऐतिहासिक कल्पना वाली कहानी है। प्रसाद अपनी बात कहने के लिए इतिहास का इस्तेमाल करते हैं। पुरस्कार इन्हीं कहानियों में से एक है। इस कहानी में प्रसाद की अन्य कहानियों की तरह स्वाभिमान भी झलकता है। यह कहानी मगध तथा कोशल राज्यों पर केंद्रित है। इस कहानी में प्रसाद ने राज्य द्वारा प्रजा की भूमि के अधिग्रहण की प्रथा को अपना लक्ष्य बनाया है। इस कहानी की नायिका मधुलिका वाराणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहरण की एक मात्र कन्या है लेकिन विपन्न होकर सामान्य कृषक के रूप में जीवन बिता रही है। राज्य के एक प्रसिद्ध उत्सव के अवसर पर परंपरा के अनुसार राजा कीमत देकर उसकी भूमि का अधिग्रहण करना चाहते हैं लेकिन वह परंपरा का सम्मान करते हुए भूमि तो देने को तैयार है, पर उसका मूल्य स्वीकार करना नहीं चाहती है। इस तरह यह कहानी भी स्वाभिमान रक्षा की कहानी है।

'गुंडा' प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इस कहानी को को हिंदी कहानी के विकास में मील का पत्थर भी माना जा सकता है।

यह प्रसाद की प्रसिद्ध कहानी है जो अपने मर्म में एक प्रेम कहानी है लेकिन इसका एक गहरा सामाजिक और समाजशास्त्रीय पक्ष भी है। प्रसाद ने इस कहानी के माध्यम से अठारहवीं सदी की काशी की उस विद्रोही संस्कृति करते हैं, जिसका नेतृत्व नन्हकू करता है। इस कहानी में काशी की विद्रोही प्रवृत्ति को प्रसाद रेखांकित करना चाहते हैं जिसे आज 'गुंडागिरी' कहा जाता है। इस कहानी में गुंडा बनने का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

'सालवती' प्रसाद की अंतिम कहानी है। इस कहानी में पुराकथाएँ और दर्शनशास्त्र एकत्र हैं। यह कहानी दार्शनिक विमर्श पर आधारित है जो हिंदी कथा साहित्य में दार्शनिक विमर्श की परंपरा आरंभ करने वाली पहली कहानी है। यह वैशाली गणराज्य पर केंद्रित है जिसे भारत का पहला गणतांत्रिक राज्य माना जाता है। इस कहानी में तत्कालीन गणतंत्र के गुण तथा दोष दोनों ही प्रस्तुत किए गए हैं। इस तरह स्वतंत्रता के लिए किए जा रहे संघर्ष को इस कहानी में देखा जा सकता है। इसमें स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता पर भी बल दिया गया है। "आर्थिक पराधीनता ही संसार में दुःख का कारण है। मनुष्य को उससे मुक्ति पाना चाहिए; मेरा इसलिए उपास्य है स्वर्ण।"(पृष्ठ संख्या 117) इस तरह प्रसाद आर्थिक स्वतंत्रता को ही वास्तविक स्वतंत्रता मानते हैं। इसके साथ-साथ वे मानसिक पराधीनता को भी शत्रु समझते हैं।

समीक्षक : **दीपक मंजुल**

लेखक : **निशांत जैन**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 98

मूल्य : रु. 130/-

राजभाषा के रूप में हिंदी

पिछले दिनों एक खबर, जो भाषा प्रेमियों, विशेषकर हिंदी भाषा के प्रेमियों के लिए विशेष महत्त्व की थी और साथ ही आह्लादित करने वाली खबर थी। भले ही राजनीतिक तथा अन्य नकारात्मक खबरों के ढेर में दबकर कोई विशेष हलचल नहीं मचा पाई, किंतु खबर मार्के की थी और विशेष ध्यातव्य भी। खबर यह थी कि हिंदी भाषा विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा बन गई है। इसने चीन की मंदारिन भाषा को दूसरे नंबर पर धकेल दिया है। आज तक संयुक्त राष्ट्र की भाषा न बन पाने का दर्द और त्रासदी इस खबर से कुछ कम होती अनुभूत हुई। वैसे, यह भी कम बड़ी त्रासदी नहीं है कि भारत देश की सर्वाधिक मुख्य भाषा, देश की एकमात्र संपर्क भाषा और सांविधानिक रूप से 'राजभाषा' का दर्जा पाई हिंदी अपने ही देश की अब तक 'राष्ट्रभाषा' नहीं बन पाई है। हिंदी के देश की राजभाषा होने तथा राष्ट्रभाषा होने का तर्क प्रस्तुत करती अब तक न जाने कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, किंतु राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से गत वर्ष प्रकाशित पुस्तक 'राजभाषा के रूप में हिंदी' (लेखक-निशांत जैन) उन तमाम पुस्तकों से कुछ अलग और विशिष्ट है।

दरअसल, यह पुस्तक राजभाषा के रूप में हिंदी के अर्थ, अवधारणा और स्वरूप; विकास, क्षेत्र और आयाम तथा इसकी सांविधानिक और वैधानिक स्थिति पर संक्षेप में, किंतु बड़ी ही तार्किक और विश्लेषणपरक व्याख्या प्रस्तुत करती है, जिसे पढ़कर किसी भी पाठक की राजभाषा हिंदी के संबंध में असंख्य जिज्ञासाओं का शमन और समाधान हो जाता है।

भाषा क्या है और राजभाषा का अर्थ, अभिप्राय और परिभाषा क्या है यहाँ से शुरुआत कर हिंदी के राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, जनभाषा, मानकभाषा एवं प्रयोजनमूलक भाषा आदि विविध रूपों पर पुस्तक में विचार किया गया है। राजभाषा और राष्ट्रभाषा में अंतर भी स्पष्ट किया गया है। राजभाषा की आवश्यकता क्या है और राजभाषा से क्या अपेक्षा है, के साथ ही राजभाषा के स्वरूप और विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। हिंदी भाषा का विकास कैसे हुआ, यह जानना रोचक होगा जिसे लेखक ने पहले अध्याय के अंत में लिखा है। हिंदी प्रेमियों को जानकर यह अच्छा लगेगा कि हिंदी भाषा आज एक हजार वर्ष की हो चुकी है। यह एक सामान्य धारणा और मान्यता है कि हिंदी का प्रारंभिक स्वरूप लगभग 1000 ई. में धरती फोड़कर अंकुरण से पल्लवन की अवस्था की ओर उन्मुख हुआ था। हिंदी का वर्तमान स्वरूप लगभग 1900 ई. के आस-पास विकसित हुआ और वर्तमान हिंदी भी विकसित रूप में आकर भी विकास की प्रक्रिया में ही है। यानी हिंदी का शब्द भंडार अब भी निरंतर बढ़ रहा है। 'हिंदी' शब्द मूलतः फारसी भाषा का शब्द है, जिसकी व्युत्पत्ति 'हिंद' या 'हिंदू' शब्द से मानी जाती है। यह तथ्य कदाचित बहुत-से हिंदी भाषियों को भी विदित न होगी।

यह कितनों को पता होगा कि औरंगजेब के शासनकाल में भी खड़ी बोली हिंदी राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है? 18वीं सदी में पेशवा, सिंधिया तथा होल्कर आदि मराठी घराने हिंदी में राज-काज चलाते थे। राजस्थान के विभिन्न देशी राजाओं की रियासतों में तो पूरा पत्राचार हिंदी में होता था। कंपनी का शासन आने पर सरकार के न्यायिक एवं विधि-क्षेत्र में भी हिंदी का प्रचलन था।

हिंदी एक आधुनिक आर्यभाषा है, जिसका जन्म आर्यों की मूलभाषा संस्कृत की उत्तराधिकारिणी भाषाओं क्रमशः पालि व प्राकृत से हुआ है। संस्कृत भी वैदिक व लौकिक—इन दो रूपों में विभक्त

थी। रामायण, महाभारत आदि महाकाव्य लौकिक संस्कृत में लिखे गए। फिर, पालि बौद्ध साहित्य की भाषा है। प्राकृत बोलचाल की भाषा थी। विद्वानों के अनुसार, जब भाषा का रूप सुसंस्कृत न रहकर बोलचाल वाला हो जाता है तो वह 'बिगड़ी हुई' भाषा मानी जाती है और वह 'अपभ्रंश' कहलाती है। इसे ही 'अवहट्ठ' भी कहा जाता है। हिंदी का विकास भी अपभ्रंश से ही हुआ है। 11वीं-12वीं शताब्दी तक साहित्य में इस अपभ्रंश का प्रयोग होता रहा। विद्वान हजार वर्ष की हिंदी को तीन कालखंडों में बाँटते हैं—आदिकाल (1000—1500 ई.), मध्यकाल (1500—1800 ई.) तथा आधुनिक काल (1800—अब तक)। भारतेंदु युग (1850—1885) में हिंदी खड़ी बोली के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी थी। भारतेंदु ने 1873 में स्वयं लिखा था—'हिंदी नए चाल में ढली'। बाद में, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में हिंदी का 'खड़ी बोली' रूप और भी परिमार्जित हुआ और अब यह राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा और मानक भाषा के रूप में तीव्र विकास करने लगी। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की तो मुख्य भाषा ही हिंदी थी।

स्वतंत्रता पश्चात काल में ही सही मायनों में हिंदी का राजभाषा के रूप में विकास माना जाना चाहिए। 14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा ने 'हिंदी' को राजभाषा घोषित किया था। इसलिए यह दिवस 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाया जाता है। पुस्तक में राजभाषा के रूप में हिंदी का विकास, उसके क्षेत्र और आयाम के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। अंतिम अध्याय में राजभाषा के रूप में हिंदी की सांविधानिक और वैधानिक स्थिति पर विचार किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा से संबंधित हैं। अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी स्वीकार की गई।

कुल मिलाकर, 'राजभाषा के रूप में हिंदी' शीर्षक यह पुस्तक केवल हिंदी के अध्येताओं और छात्रों के लिए उपयोगी नहीं है, बल्कि सामान्य पाठकों के लिए भी समान रूप से उपयोगी है। पुस्तक में हिंदी के प्रादुर्भाव और विकास क्रम को समझाते हुए आधुनिक समय में हिंदी के राजभाषा बनने तक के सफर को बड़े ही सलीके से प्रस्तुत किया गया है।

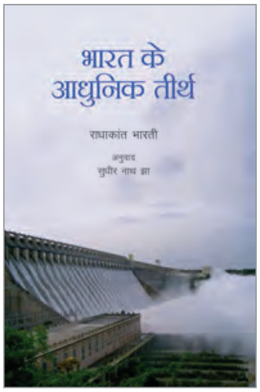

समीक्षक : **दीपक मंजुल**

लेखक : **राधाकांत भारती**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 200

मूल्य : रु. 225/-

भारत के आधुनिक तीर्थ

बाँध निर्माण के क्षेत्र में भारत विश्व में तीसरे स्थान पर है। इन बाँधों का उद्देश्य मुख्यतः बाढ़ों पर नियंत्रण रखने के साथ-साथ समुचित जल आपूर्ति और जल-विद्युत ऊर्जा उत्पादन सुनिश्चित करना रहा है। इन बाँधों को 'भारत के आधुनिक तीर्थ' की संज्ञा से भी अभिहित किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक भारत के बाँधों एवं बाँध परियोजनाओं के संबंध में व्यापक, बहुआयामी और सांगोपांग जानकारी देती है, जिसे पढ़कर भारत में बाँधों के निर्माण एवं उसकी उपादेयता को समझा जा सकता है।

देश की आजादी के बाद कृषि क्षेत्र को समुन्नत करने, बाँध बनाकर बाढ़ की संभावना रोककर विद्युत उत्पादन करके देश की ऊर्जा आवश्यकता को पूरा करने आदि के संबंध में प्रबल आवश्यकता महसूस की गई। कृषि, ऊर्जा, उद्योग आदि क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता की भी आवश्यकता को समझा गया। तदनुरूप, देश के नीति-निर्माताओं ने देश में प्रकृति प्रदत्त प्राकृतिक संसाधनों से अधिकतम लाभ लेने के बारे में सोचा। नदियों पर बाँध बनाना देश के नीति-नियंताओं की इसी सोच का परिणाम था। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने किसी नदी परियोजना के उद्घाटन-अवसर पर बाँधों को 'भारत के आधुनिक तीर्थ' की संज्ञा देकर बाँधों की महत्ता और उपादेयता को रेखांकित किया था। कहना न होगा कि स्वतंत्रता के बाद से ही देश में नदी घाटी परियोजनाओं के महत्त्व को समझ लिया गया था और देशभर में बाँधों के निर्माण की योजनाओं को कार्यरूप देना शुरू कर दिया गया था। सिंचाई और पेयजल आपूर्ति भी इन बाँधों के निर्माण से होने वाले लाभों में अभिप्रेत थे। स्वतंत्रता-उपरांत अब तक 4,500 से अधिक बाँधों का निर्माण होना, इन्हीं सब लाभों-लक्ष्यों की पूर्ति-स्वरूप समझा जाना चाहिए।

भारत में बाँध परियोजनाओं में जिन परियोजनाओं/प्रकल्पों का नाम गौरव के साथ लिया जाता है, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—दामोदर घाटी निगम (डीवीसी) परियोजना, हीराकुंड बाँध परियोजना, भाखड़ा नांगल परियोजना, नागार्जुन सागर परियोजना, इंदिरा सागर परियोजना, इंदिरा गाँधी नहर परियोजना, सरदार सरोवर परियोजना, सुवर्णरेखा बहु-उद्देशीय परियोजना आदि। पुस्तक की शुरुआत 'भारत की भू-आकृतिकी एवं जलवायु' शीर्षक से की गई है। तदंतर, 'जल संसाधन विकास योजना एवं उसका प्रभाव' अध्याय में शीर्षक नाम के अनुरूप विषय पर चर्चा है। फिर, 'जल विद्युत विकास के आयाम' पर विचार किया गया है। यह बताया गया है कि स्वतंत्रता के समय से पनबिजली विकास में वर्ष 1947 से 508 मेगावाट से 22,007 मेगावाट तक की निरंतर वृद्धि (अगस्त 1998 तक) हुई है। दामोदर घाटी निगम को स्वतंत्र भारत की पहली

बहु-उद्देशीय नदी घाटी परियोजना के रूप में निरूपित किया गया है, जिसने 'अग्रदूत' की भूमिका निभाई और जिसके बाद से ही देश में नदी घाटी परियोजनाओं की शुरुआत हुई। डीवीसी को स्वयं नेहरूजी ने 'एक शक्तिशाली प्रयोग' कहा था। डीवीसी के अंतर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण बाँध बनाए गए।

1948 में हीराकुंड बाँध की नींव रखते हुए पं. नेहरू ने इसे 'भविष्य का महान स्वप्न' कहा था-एक ऐसा भविष्य, 'जो बहुत दूर नहीं है।' यह स्वतंत्र भारत की पहली प्रमुख बहु-उद्देशीय नदी घाटी परियोजना थी। मिट्टी का यह सबसे लंबा बाँध माना गया। भाखड़ा नांगल हीराकुंड और डीवीसी की तरह प्रथम पंचवर्षीय योजना की देन था। भाखड़ा नांगल नदी घाटी परियोजना को 'भारत का गौरव' माना जाता है। इसी तरह, नागार्जुनसागर परियोजना को 'महान सफलता की कहानी' कहा गया है। इसे 'भारत की मानवता के मंदिर का आधार' कहा गया। राजस्थान के इंदिरा गाँधी नहर परियोजना को 'मरुस्थल का फूल' कहा जाता है। ऐसा इसलिए कि जो कभी मरुभूमि था, वह इस नहर परियोजना के बाद एक हरे-भरे क्षेत्र में बदल गया। आज नहर के किनारे उछलते-कूदते चिंकारे, नाचते मोर रेगिस्तान की खुशहाली की कथा सुनाते हैं।

कुल मिलाकर, यह पुस्तक छात्रों के लिए जितना उपयोगी है, उतना ही प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे अभ्यर्थियों के लिए भी। सामान्य पाठक भी समान रूप से इस पुस्तक के लाभार्थी साबित होंगे।

गाँधी : भाषा-लिपि विचार-कोश

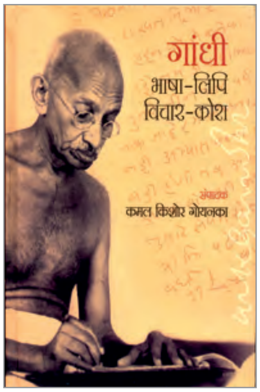

समीक्षक : **दीपक मंजुल**

लेखक : **कमल किशोर गोयनका**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 324

मूल्य : रु. 580/-

महात्मा गाँधी 20वीं शताब्दी के प्रभावशाली और महानतम व्यक्तित्वों में से एक हैं। वे मूलतः आध्यात्मिक-धार्मिक सोच और विचार वाले साहित्य-हृदय उत्कृष्ट राजनीतिक व्यक्तित्व थे। उनकी विचार-शृंखला राजनीति, धर्म, अध्यात्म, साहित्य, कला तथा जीवन के अनेक अन्य पक्षों-आयामों का एक उत्कृष्ट समुच्चय थी। कहना न होगा कि भाषा को लेकर भी उनके विचार हमें यत्र-तत्र विपुल मात्रा और परिमाण में प्राप्त होते हैं। दरअसल, गाँधी का गुजराती भाषा के अलावा अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू पर भी अधिकार था। वे इन भाषाओं में अपने विचार व्यक्त कर सकते थे, करते भी थे। 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटकर जब उन्होंने भारत को समझने की गरज से भारत-यात्रा की थी तो अपने इस विपुल यात्रा-क्रम में उन्होंने जान लिया कि हिंदी ही इस देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी या उर्दूनिष्ठ हिंदी से इतर, दोनों के संतुलित समुच्चय वाली हिंदी, जिसे वे हिंदुस्तानी कहते थे, को अपनाने के पक्ष में थे। वह इसे 'भाषा का मध्य मार्ग' कहते थे। भारत की मिश्रित जनसंख्या में 'हिंदुस्तानी जबान' की तब जितनी जरूरत थी, उतनी ही अब भी है।

यद्यपि, गाँधीजी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रति बेहद आग्रही थे, फिर भी वे अंग्रेजी की सार्वदेशिकता के व्यावहारिक पक्ष को कभी भूले नहीं, न ही अपनी आँखों से ओझल होने दिया। इसलिए गाँधीजी स्वभाषा/स्वदेशभाषा के पक्षकार होकर भी अंग्रेजी की अपरिहार्यता के पैरोकार थे। वे स्वयं तो अंग्रेजी जानते ही थे, आम भारतीयों को भी अंग्रेजी सीखने की आवश्यकता के बारे में अकसर चर्चा करते थे। गाँधीजी चाहते थे कि हिंदी जानने वाले दक्षिण भारत की कोई एक भाषा जरूर जानें। इसी तरह, दक्षिण के लोग भी हिंदुस्तानी सीखें, उनका यह आग्रह था। लिपि के संबंध में भी गाँधीजी समन्वयवादी थे, अर्थात् वे चाहते थे कि देवनागरी लिखने में जिन्हें सहूलियत हो, वे देवनागरी लिपि युक्त हिंदी लिखें और जिन्हें अरबी में सहूलियत हो, वे अरबी लिपि में। तो भी, देवनागरी लिपि के प्रति उनका झुकाव था। गाँधीजी देवनागरी को सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि मानते थे। रोमन लिपि में हिंदुस्तानी लिखने की कल्पना से ही वे भयभीत हो जाते थे।

गाँधीजी ने साफ शब्दों में हिंदी को राष्ट्रभाषा कहा। गाँधीजी का कथन था-जिस देश की कोई भाषा नहीं, वह राष्ट्र गूँगा है। वे कहते थे कि देश के 33 करोड़ लोग हिंदुस्तानी या हिंदी जानते हैं और यही भाषा राष्ट्रभाषा कहलाने की अधिकारिणी है। प्रस्तुत पुस्तक संपादक डॉ. कमल किशोर गोयनका के विगत दस वर्षों के अथक परिश्रम का प्रतिफल है। इस पुस्तक में संपादनकर्ता ने 'गाँधी वाङमय' के अलावा जहाँ कहीं भी, चाहे वह भाषण के रूप हो, लेख-रूप में या पत्र में लिखे गए हों, गाँधीजी के भाषा संबंधी विचार मिले, उनका बड़े ही मनोयोग और श्रमपूर्वक संचयन किया और यह पुस्तक आम पाठक के सम्मुख है। यह पुस्तक गाँधीजी के भाषा संबंधी विचारों को जानने का संभवतः सबसे अधिक विश्वसनीय, प्रामाणिक व उत्कृष्ट आधार स्रोत साबित होगा।

रिवाजों की बिसात

समीक्षक : **बीरेंद्र कुमार चौधरी**

लेखक : **इन्दु**

प्रकाशक : ए. आर. पब्लिशिंग कंपनी, नवीन शाहदरा, दिल्ली

पृष्ठ : 136

मूल्य : रु. 150/-

समाज अपने आप में एक जटिल तंत्र है। यह अपने इसी तंत्र के ताने-बाने में हमेशा बँधे रहना चाहता है। जो लीक सैकड़ों साल पहले किसी ने खींच दी, बस उसी लीक की सीमा में हम आज भी जीना मुनासिब समझते हैं। और वह भी कोल्हू के बैल की तरह एक निश्चित परिधि में घूमते रहेंगे। उससे थोड़ा भी इतर जाने की कोई हिम्मत भी नहीं कर सकता। खासकर हम मध्यवर्गीय परिवारों में यदि किसी ने ऐसा करने की जुर्रत की, तो उसे इसका खामियाजा अवश्य भुगतना पड़ता है। उसके साथ मार-पीट, कई बार तो यह हिंसक झड़प से लेकर खूनी संघर्ष तक का रूप ले लेता है। हमारा समाज इसे रंच मात्र भी बर्दाश्त करने को तैयार नहीं है। कोई परिवार भले ही अपने आपको कितना ही उदारवादी दिखाने का प्रयास करता हो, लेकिन जब भी कभी इस तरह की घटना होती है, जिसमें उस परिवार का लड़का या लड़की अपनी विरादरी से बाहर किसी को अपने जीवनसाथी के रूप में पसंद करते हैं तो सबसे पहले उसे अपने परिवारवालों के विरोध का सामना करना पड़ता है। नातेदार, रिश्तेदार, संबंधी आदि बाद में ऐसा करते देखे जाते हैं। आखिर क्यों? अपने बच्चों की खुशी किस बात में है, यह बात उन्हें क्यों समझ में नहीं आती है। और यदि लड़का और लड़की दोनों दो अलग-अलग धर्मों के यानी हिंदू और मुसलमान हों तो फिर कहने ही क्या? फिर तो खून-खराबा होना मानो तय है।

लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समय अपनी गति से सदैव पल-पल आगे बढ़ता रहता है और समय की इसी गति के साथ समाज की सोच में भी थोड़ा ही सही, पर परिवर्तन अवश्य आता है। कल जो बात समाज के लिए अकाट्य थी, उसका मानदंड मानी जाती थी, आज उसी को रूढ़ि नाम दिया जाने लगा है। यानी जो कल था आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं रहेगा। हमारे उपनिषद भी तो यही कहते हैं कि 'नैनं शाश्वतं संसारे।' यानी संसार में कुछ भी शाश्वत नहीं है। लेकिन इस परिवर्तनशील संसार में एक चीज ऐसी है जो कभी नहीं बदलती और वह है—'रिश्तों का एहसास।' रिश्ता अपनों का, रिश्ता अपनों के साथ और रिश्ता अपना-सा। यही एक ऐसा एहसास है जो मनुष्य को जीने का मोह देता है वरना हम हैं या नहीं, क्या फर्क पड़ता है। बात सौ फीसदी सच है कि यदि रिश्तों का यह एहसास समाप्त हो जाए तो मनुष्य के मनुष्य होने का अर्थ ही समाप्त हो जाएगा, मानवता और सामाजिकता का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

देश और दुनिया आज 21वीं सदी का सफर तय कर रही है। विज्ञान ने काफी तरक्की कर ली है। लोग चाँद और तारों का सफर कर रहे हैं। परंतु दकियानूसी के मामले में समाज आज भी वहीं खड़ा दिखाई दे रहा है जहाँ वह आज से सैकड़ों साल पहले खड़ा था। लेकिन समाज में कोई भी इस बात पर विचार करते नहीं दिखता कि 'समाज का कोई भी तबका हो, कोई भी जाति या धर्म हो, कोई भी देश हो, लोगों के बनाए दकियानूसी मानसिकता के बोझ को तो उसे अपने ही काँधे पर ढोना पड़ेगा। और इसी दकियानूसी मानसिकता के कारण आज भी महिलाओं और उसकी भावनाओं की हर दम, हर पल बलि चढ़ा दी जाती है; कभी धर्म के नाम पर, कभी रिवाज के नाम पर तो कभी कुल और समाज की मर्यादा के नाम पर। उक्त उपन्यास 'रिवाजों की बिसात' में लेखिका ने समाज की दकियानूसी से ओतप्रोत मानसिकता पर अपनी लेखनी के माध्यम से करारी चोट की है।

इसमें कोई शक नहीं कि धर्म धारण करने की चीज है लेकिन यदि वही धर्म किसी के जीवन का कोढ़ बन जाए, उसकी बरबादी का कारण बन जाए, उसे लकीर का फकीर बनने को मजबूर कर रहा हो तो ऐसे धर्म को तिलांजलि देने में तनिक भी देर नहीं करना चाहिए। इस उपन्यास की नायिका जैनब अपने परिवार, समाज और धर्म के उसूलों को बचाने में अपने जीवन को होम कर देती है। वह अपने प्यार को मात्र इसलिए अपने गले का हार नहीं बना सकती है क्योंकि वह मुस्लिम है और उसका प्रेमी एक हिंदू, और उसके परिवार वाले इस रिश्ते को कतई बर्दाश्त नहीं करेंगे। इसके बाद तो उसके जीवन में एक के बाद एक तूफान आते हैं। रिवाजों का दम भरने वाले तथाकथित शिक्षित, उसके अपने ही धर्म के पति को अपनी मर्दानगी का दंभ है और वह अपना मेडिकल टेस्ट कराने की जैनब की सलाह पर बिफर उठता है और कहता है—"तुम इतनी बेगैरत हो गई कि यह बात सुनकर चुपचाप चली आई। तुम्हारी अक्ल पर अफसोस हो रहा है। तुम्हारे शौहर की बेइज्जती करने पर भी तुम्हें शर्म न आई।" इस बात को वह अपना अपमान मान बैठता है और जब दुबारा जैनब इसका जिक्र करती है तो वह आपे से बाहर होकर उसे तलाक दे देता है। इधर जैनब लौटकर अपने मायके आ जाती है। अपने अब्बू से हौसला पाकर वह नए सिरे से जिंदगी की शुरुआत करती है और एम.ए. की पढ़ाई पूरी कर यूनिवर्सिटी में शिक्षक बन जाती है। उधर उसके पूर्व पति आयान की दूसरी शादी के लिए रिश्ते उसके मनोनुकूल नहीं मिलते हैं। वह जैनब से फिर निकाह करने को तैयार हो जाता है और इस्लाम के अनुकूल काम करने की वह उसे सलाह

देता है। बाद में उसके और जैनब के पिता की रजामंदी से जैनब का एक ऐसे भूखे भेड़िये से निकाह होता है जो एक ही रात में उस कली को रौंद कर रख देता है। लेकिन ऊपर वाले की मर्जी पर किसका जोर। जैनब का फिर से तलाक हो जाता है और आयान के साथ दूसरी बार निकाह की तैयारी हो जाती है। लेकिन ऐन मौके पर पता चलता है कि जैनब माँ बनने वाली है और फिर निकाह नहीं हो पाता है। समय के साथ जैनब एक बेटी आलिया को जन्म देती है। भाई की शादी के बाद जैनब आलिया के साथ यूनिवर्सिटी से मिले कमरे में आकर रहने लग जाती है जहाँ आलिया बड़ी होती है और वह भी अपनी माँ के नक्शे-कदम पर चलती हुई आगे बढ़ती है और अपनी पढ़ाई को जारी रखती है। लेकिन पढ़ाई के इसी दौर में आलिया भी अपनी माँ की तरह ही एक हिंदू लड़के को अपना दिल दे बैठती है जिसका पता जैनब को तब चलता है जब एक दिन वह अपनी सहेली के घर घूमने जाती है और उसकी गैर-मौजूदगी में जैनब उसके कमरे की सफाई करती है जिसमें पत्र-व्यवहार के कुछ मुहब्बत भरे पत्र उसके हाथ लगते हैं। पूछने पर आलिया अपनी माँ को सारी बात सच-सच बता देती है और इसके साथ ही वह उससे वादा करती है कि उसकी आज्ञा के बगैर वह शादी नहीं करेगी, लेकिन इसके साथ ही वह अपनी माँ से वचन माँगती है कि वह किसी दूसरे लड़के के साथ जीवन में कभी शादी नहीं करेगी। जैनब भारी धर्मसंकट में पड़ जाती है। इसी दौरान जैनब से मिलने उसके पिता आते हैं तो दोनों बाप-बेटी में आलिया के शादी को लेकर चर्चा होती है लेकिन जब नाना को नतनी के प्रेम और विवाह की इच्छा के बारे में पता चलता है तो वे भी एक कट्टर मुसलमान बन जाते हैं और दो टूक शब्दों में अपना जवाब देते हैं कि उन्हें किसी भी हाल में यह रिश्ता मंजूर नहीं है और वे इस शादी में मौजूद भी नहीं रहेंगे। लेकिन अपने धर्म और दुनिया की ठोकरें खाई जैनब एक न्यायप्रिय और ममतामयी माँ का परिचय देती है और वह आलिया की शादी के लिए अपनी बिरादरी से बगावत करके भी करने को तैयार हो जाती है और कबीर के घर रिश्ता तय करने पहुँच जाती है जहाँ उसकी मुलाकात उसके अपने प्रेमी से होती है और पता चलता है कि कबीर उसी का बेटा है। यह जानकर उसे बेहद तसल्ली होती है कि अब उसकी बेटी हर तरह से सुरक्षित है। जैनब की इस शादी के लिए तैयार होना उसकी सोच की वैज्ञानिकता को दर्शाता है कि धर्म की डोरी से बँधकर जब उसे जीवनभर कुछ नहीं मिला तो इस बात की क्या गारंटी कि धर्म की सीमाओं में रहकर उसकी बेटी का जीवन सुरक्षित रह पाएगा?

लेखिका ने छोटे-छोटे वाक्यों में संवाद कहे हैं। संवादों का प्रवाह इतनी सरल और सहज भाषा में लिखा गया है कि इससे भाषा का लालित्य निखर उठा है। सामान्य बोलचाल में उपयोग की जाने वाली शब्दावली के प्रयोग से उपन्यास पठनीय बन गया है और कहीं भी उबाऊपन नहीं उभरता। उपन्यास शुरू से अंत तक इस कदर शब्दों के ताने-बाने में कसा गया है कि एक बार शुरू करने के बाद इसे छोड़ने का मन ही नहीं करता। इसी धाराप्रवाह पठनीयता में लेखक की उत्कृष्टता का पता चलता है। निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो यह उपन्यास अत्यंत सहज, सरल, बोधगम्य और पठनीय है। लेखिका की रचना कौशल इसमें पूरी तरह निखर कर सामने आया है।

समीक्षक : **बीरेंद्र कुमार चौधरी**

लेखिका : **आरती मिश्रा 'आश्चर्य'**

प्रकाशक : ए. आर. पब्लिशिंग कंपनी, नवीन शाहदरा, दिल्ली

पृष्ठ : 216

मूल्य : रु. 595/-

बहस जनमानस की

व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यक्ति से समाज, गाँव, राज्य और राष्ट्र का निर्माण होता है। यही आपस में मिलकर संस्था का भी निर्माण करता है। इसके साथ ही हर समाज और राष्ट्र की अपनी-अपनी सभ्यता और संस्कृति होती है। लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं कि समाज के हर व्यक्ति की अपनी आदतें होती हैं। कुछ आदतें नई तो कुछ वर्षों पुरानी होती हैं। और यही पुरानी आदतें हमारी प्रगति के राह में बाधा पहुँचाने का काम करती हैं। हम जब भी आगे बढ़ने, समाज में किसी तरह का बदलाव लाने का प्रयास करते हैं, तो ये आदतें हमें पीछे धकेलने का काम करती हैं। यह हमारे प्रगति के पथ का रोड़ा है। पर बदलाव हमारी प्रगतिशीलता के द्योतक होते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के प्रगति के पथ का सच्चा वाहक वहाँ का मानव संसाधन है। निश्चय ही मानव संसाधन किसी भी देश की मजबूती, विकास, समावेशीपन, प्रगतिशीलता, आधुनिकता और भौतिकवाद के चरमोत्कर्ष का अहम पड़ाव है।

इसमें कोई शक नहीं कि यदि समाज और सरकार की खामियाँ गिनने-गिनाने का मौका मिल जाए तो इसे कोई भी चूकना नहीं चाहता। लेकिन सवाल उठता है कि इन खामियों को दूर कौन करेगा? खासकर भारत और भारतीय उपमहाद्वीपीय क्षेत्र में यह प्रवृत्ति बहुतायत से देखी जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जो जापान पूरी तरह से बरबाद हो चुका था, परंतु आज विकास के उस चरमोत्कर्ष पर है जहाँ उसे बरबाद करने वाला अमेरिका भी अपने दाँतों तले उँगली दबाने को विवश है। विभिन्न क्षेत्रों में जापानी तकनीक को तकनीक का मापदंड माना जाता है। लेकिन हमारे देश

भारत को आज़ाद हुए 70 साल हो गए, हम आज भी अपने विकास के लिए दूसरे विकसित देशों की ओर टकटकी लगाए रहते हैं। चीन के बाद संसार में सबसे अधिक युवा नागरिक भारत में ही हैं, फिर भी हम विकसित नहीं हो पाए हैं। देश की आधी आबादी, यानी महिला वर्ग इज्जत, मर्यादा, शान, गरिमा आदि तत्त्वों की ओट में विकास के इस दौर में भी निष्क्रियता, बेरोजगारी, खालीपन, परेशानी, मजबूरी व तंगहाली में जी रहा है। इनमें से कुछ ने तो चुल्हा-चौका से अपने आपको बाहर निकालने में सफलता हासिल की है, पर उस स्तर पर नहीं जिस स्तर पर होना चाहिए। और हमारा समाज है कि वह ऐसी महिलाओं को खुले दिल से अंगीकार नहीं कर पा रहा है। वह उन परिवारवालों को इसके लिए दोषी ठहराते हैं। यह भी सच है कि दोष दूसरों के गले मढ़ देना बहुत आसान है, लेकिन अपने आप से यह सवाल करना कि हम किस हद तक सही हैं, बहुत मुश्किल काम है। हम भारत के सशक्तीकरण की बात तो करते हैं, पर उस दिशा में कोई प्रयास नहीं करते। न तो निजी तौर पर और न ही सरकार के स्तर पर इस दिशा में कोई ठोस पहल की गई है ताकि देश अपने विशाल मानव संसाधन के बल पर तेजी से सशक्तीकरण की राह पर चल पड़े। और यदि ऐसा संभव हो जाए तो फिर देश और समाज खुद-ब-खुद तरक्की के राह पर चल पड़ेगा।

यह भी एक कटु सत्य है कि जब भी राह चलते या फिर गाँवों के चौपाल पर; जहाँ भी दो-चार लोगों का समूह इकट्ठा होता है, वहीं सरकार और समस्या पर बातें होने लगती हैं। यदि थोथी दलील के माध्यम से समस्या का समाधान संभव होता तो इन बहसों में भाग लेने वाले लोग चुटकी बजाते ही इन समस्याओं का समाधान कर चुके होते; लेकिन ऐसा संभव नहीं है। लेखिका ने अपनी इस पुस्तक 'बहस जनमानस की' में उन्हीं बातों पर विस्तार से चर्चा की है जिस पर समाज में आए दिन बहस होती है। इन मुद्दों को लेखिका ने समृद्ध मानव, स्वच्छ भारत, शिक्षा, किसान, महिला, युवा, राजनीति, जनसंख्या, स्वास्थ्य, पंचायती राज, प्रशासन, खेल, आतंकवाद, नक्सलवाद और अलगाववाद तथा भारत के विकास की रूपरेखा और गाँव; जैसे ज्वलंत मुद्दों को न केवल उठाया है बल्कि इन विषयों पर व्यापक स्तर पर चर्चा भी की है और उनसे संबंधित समस्याओं के समाधान का रास्ता बताया है। वे लिखती हैं—'हर व्यक्ति को यह सोचना चाहिए कि मैं जहाँ हूँ, जितना हूँ, उतने में ही बहुत कुछ करने की संभावनाएँ हैं, बशर्ते कुछ विशेष करने का माद्दा होना चाहिए। क्योंकि दृष्टि में ही सृष्टि है।'

लेखिका कहती हैं—'जब कोई ग्राम प्रधान होने का वादा करता है तो उसके सपनों में होता है कि अगर बना तो हमारे पास आलीशान मकान होगा, लग्जरी गाड़ी होगी, शानो-शौकत होगी। प्रतिष्ठा पलक पाँवड़े बिछाए तैयार खड़ी...' और आज की राजनीति का यही सच भी है। चाहे ग्राम पंचायत के स्तर की हो या फिर राष्ट्रीय स्तर की; हर जगह एक जैसी मानसिकता है। इसके समाधान हेतु लेखिका ने पंचायती राज का न केवल खाका दिया है बल्कि पंचायतों से लेकर केंद्रीय मंत्रियों और सी.एम. व पी.एम. के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने अधिकारों की बात तो करते हैं, पर हमें यही पता नहीं होता कि हमारा कौन-सा अधिकार किस निकाय के अधीन संरक्षित है। और जब हमें इसका सही-सही ज्ञान हो जाता है तो फिर भटकने की जरूरत ही नहीं रह जाएगी। इस दिशा में लेखिका का यह विस्तार से किया गया वर्णन निश्चय ही समाजोपयोगी है।

समग्र रूप से यदि इस पुस्तक का मूल्यांकन किया जाए तो निश्चय ही यह पुस्तक समाजोपयोगी है और खासकर महिलाओं और युवाओं के साथ ही राजनीति के क्षेत्र से लेकर प्रशासनिक क्षेत्र तक के लोगों; यानी समाज और प्रशासन के सभी अंगों के लिए बेहद उपयोगी है।

विज्ञान के प्रयोग

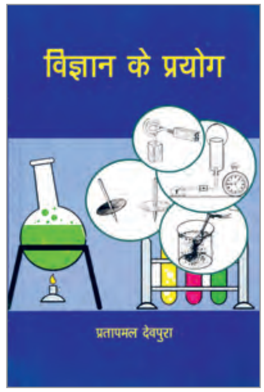

समीक्षक : **उमा बंसल**

लेखक : **प्रतापमल देवपुरा**

प्रकाशक : विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली

पृष्ठ : 88

मूल्य : रु. 95/-

हमारे आस-पास के वातावरण में ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिन्हें देखकर बच्चों में उन्हें जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उदाहरण के तौर पर क्या हमारे चारों ओर हवा है, हवा हल्की होती है अथवा भारी, क्या उसे तौला जा सकता है, पानी का आकार कैसा होता है, क्या बर्फ और भाप पानी के ही रूप हैं, प्रकाश की किरणें किस दिशा में चलती हैं, किसी भी वस्तु की परछाई कैसे बनती है, यदि मिट्टी में पानी डाला जाए तो कहाँ चला जाता है, सात रंग मिलकर सफेद कैसे हो जाते हैं, क्या गरम करने पर द्रव पदार्थ फैलते हैं, वस्तुएँ कैसे डूबती अथवा तैरती हैं, कौन-सा पदार्थ पानी में घुल जाता है, लोहे में जंग कैसे लग जाता है, आदि ऐसे अनेक सवाल हैं जो बच्चों के मन में कौतूहल पैदा करते हैं और उनकी जिज्ञासा का समाधान करना अति आवश्यक है।

विज्ञान की हर खोज के मूल में मानव जिज्ञासा ही मूल कारक होती है। यह जिज्ञासु प्रवृत्ति ही बच्चों को नई-नई बातें जानने के लिए प्रेरित करती है। ऐसे में शिक्षकों और अभिभावकों का यह दायित्व बनता है कि वे बच्चों की जिज्ञासाओं को ध्यानपूर्वक सुनें और उनका सही समाधान प्रस्तुत करें।

अकसर शिक्षक और अभिभावक अज्ञानतावश अथवा समयाभाव के कारण बच्चों को उनके प्रश्नों का सही जवाब नहीं दे पाते अथवा जानते हुए भी सही उदाहरण देकर, सही तरीके से समझा नहीं पाते। कई बार तो उन्हें डाँट कर चुप करा देते हैं और अधिकांश बच्चों की जिज्ञासाएँ अनुत्तरित रह जाती हैं। ऐसा होने पर बच्चों की उत्सुकता समाप्त हो जाती है और वे चीजों के प्रति उदासीन हो जाते हैं। यह स्थिति बच्चों के विकास के लिए घातक है। इस स्थिति से निबटने का एकमात्र उपाय है कि बच्चों के लिए ऐसी सुपाठ्य, सरल भाषा में लिखी पुस्तकें उचित मूल्य पर उपलब्ध हों जो बच्चों की जिज्ञासाओं का समाधान कर सकें।

'विज्ञान के प्रयोग' एक ऐसी ही पुस्तक है, जिसमें विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों को अनेक छोटे-छोटे, रोचक प्रयोगों के माध्यम से समझाया गया है।

बच्चों को यदि कोई बात बताई जाए तो अधिकांश बच्चे उसे कुछ समय में भूल जाते हैं। सिर्फ सुनना उतना रोचक भी नहीं होता लेकिन यदि बच्चे किसी चीज को अपने हाथों से करके देख लेते हैं तो वह उनके मन-मस्तिष्क में गहरे पैठ जाती है और उसे भूलना बहुत मुश्किल होता है। साथ ही, अपने हाथ से काम करने में उन्हें जो सुख की अनुभूति और आत्मसंतुष्टि होती है, वह अवर्णनीय है। इसलिए इस पुस्तक के माध्यम से कुछ प्रयोगों को करके देखना वाकई रोचक होगा।

इन प्रयोगों को करने के लिए ऐसे सामान की आवश्यकता होगी जो बच्चों को आसानी से घर में उपलब्ध हो जाएँगे। उदाहरण के तौर पर कागज, पेंसिल, प्लास्टिक स्केल, स्याही, पानी, गिलास, थाली, मक्खन, शक्कर, नमक, खाने का तेल, दूध, कप, प्लास्टिक की थैली, सूती कपड़ा, ड्राइंग पिन, एल्यूमीनियम फॉइल, शीशा, दवाई की खाली शीशी, अगरबत्ती, रंगीन काँच की चूड़ियाँ, सेलो टेप आदि ढेरों सामान बच्चों को अपने घर से ही मिल जाएगा।

इस पुस्तक में 44 विभिन्न प्रयोगों को करने की विधि बताई गई है। बच्चे प्रयोग में लिखे अनुसार क्रिया करते जाएँ तो उन्हें अपने प्रश्नों के उत्तर मिलते जाएँगे। कुछ घटनाओं के कारण प्रयोगों में ही लिखे गए हैं और कुछ के कारण बच्चों को स्वयं ढूँढ़ने होंगे। प्रयोग इतने सरल हैं कि उन्हें करने में किसी परेशानी का अनुभव नहीं होगा फिर भी यदि एक बार में आप प्रयोग को सही ढंग से करने में सफल नहीं होते, तो उसे पुनः दोहराएँ। आप किसी बड़े व्यक्ति की सहायता भी ले सकते हैं। यह रोचक जानकारी से भरपूर एक अनूठी पुस्तक है।

सिद्धों की संगति में

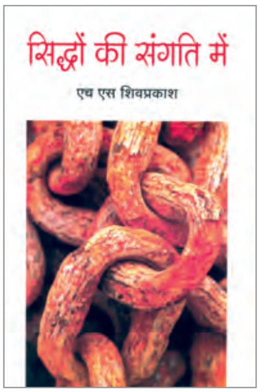

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

लेखक : **एच.एस. शिवप्रकाश**

प्रकाशक : वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर-334003

पृष्ठ : 136

मूल्य : रु. 150/-

सिद्ध पुरुषों की संगति को हमारे यहाँ 'अध्यात्म का मार्ग' कहा गया है। लेकिन हर इंसान के जीवन में यह संभव नहीं हो पाता कि उसे गुरु के रूप में सिद्ध पुरुषों की संगति प्राप्त हो। अगर पुस्तकों को भी सिद्ध पुरुषों के प्रतीक के रूप में माना जाए तो यकीन जानिए आप एक साथ बहुत-से सिद्ध पुरुषों की संगति हासिल कर सकते हैं। हर इंसान के जीवन में ही ऐसे पल आते हैं जब वह दुविधाग्रस्त होता है। उसे अच्छे और बुरे के बीच फर्क दिखाई नहीं देता। कभी वह धर्म के रास्ते पर चलना चाहता है, और कभी ईश्वर के प्रति ही उसके भीतर विद्रोह के बीज अंकुरित होने लगते हैं। वह अपने जीवन में होने वाली घटनाओं के कारण नहीं जान पाता। न ही उन घटनाओं के संकेतों को पढ़ पाता है। कभी वह आध्यात्मिकता की तरफ भागता है, कभी योग या अनीश्वरवाद की तरफ। तो ऐसे में उसे कौन मार्ग सुझाएगा? कन्नड़ साहित्यकार एच.एस. शिवप्रकाश साहित्य अकादेमी और संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार विजेता लेखक हैं। उनकी कविताएँ व नाटक अनेक भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनूदित हो चुकी हैं। लगभग 15 साल पहले उन्होंने कन्नड़ में एक पुस्तक लिखी थी। अब इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद पाठकों के लिए आया है। लेखक पुस्तक की भूमिका में यह स्वीकार करते हैं, अंधकार से आच्छादित काल में मेरे भीतर से कहीं कोई आवाज आई कि गुरुओं से मैंने जो सीखा उसे एक पुस्तक के रूप में लिख दूँ। इस तरह यह पुस्तक लिखी गई। इस पुस्तक में लेखक ने अपने आध्यात्मिक अनुभवों को साझा किया है। ये अनुभव उस दौर के हैं जब शिवप्रकाश भीषण संकटों से गुजर रहे थे। इस दौरान उन्हें तीन आध्यात्मिक विभूतियों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। इनके सत्संग ने ही उनका मार्गदर्शन किया। इन आध्यात्मिक विभूतियों में एक अवधूत, दूसरे सूफी संत और तीसरे ईसाई धर्म के प्रचारक थे। पुस्तक में एक जगह लेखक ने लिखा है, जब मैं स्कूल में पढ़ रहा था, मेरे पिता के प्रेस में काम करने वाले कर्मचारियों की संगति मुझे बहुत पसंद थी। खासतौर पर दो ईसाइयों से मेरी बहुत पटती थी। उनमें से एक का नाम 'वेलेंटाइन' था। उनके साथ रहते हुए ही मुझे ईसाइयत में दिलचस्पी बढ़ गई। लेखक ने अपने सपनों का भी बहुत सुंदर विश्लेषण किया है। लेखक दो घटनाओं का जिक्र करते हुए लिखते हैं। पहली घटना उस समय घटी जब अस्पताल जाने से पूर्व मैं घर पर

ही बीमार पड़ा हुआ था। मुझे लगा कि कोई मेरे शरीर को हवा में उठाकर जमीन पर पटक रहा था। मुझे लगा कि मेरा अंतकाल निकट आ गया है। मुझे जो दिखाई दे रहा था, उस दृश्य में मेरी जन्ममाता मेरे पास बैठी हुई थीं। दूसरी घटना उस समय घटी जब मुझे एक विशेष वार्ड में भरती करवाया गया। उस समय भोजन के नाम पर मुझे केवल दूध और फलों का रस ही दिया जा रहा था। दो महीने में ही मैं दीखने में कंकाल मात्र रह गया था। एक रात्रि मैंने बिल्कुल स्पष्ट रूप से एक स्वप्न देखा। मेरी माँ ने दरवाजा खोला तो देखा, वहाँ दो युवा पुरुष खड़े थे। वे इशारे से माँ को समझा रहे थे कि मुझे उनके साथ भेज दिया जाए। माँ ने मुझे ले जाने को इनकार कर दिया, मेरी जगह वह स्वयं जाने को तैयार थीं। तभी चौंक कर मैं उठ गया। इन दो अनुभवों से मैंने यह मतलब निकाला कि मौत मेरे सिरहाने खड़ी थी। लेकिन माँ ने मुझे बचाने के लिए अपने जीवन की बलि दे दी। बाद में लेखक की माँ का निधन हो गया। पुस्तक के आठ अध्यायों में जीवन, अध्यात्म, अस्तित्ववाद, योग, अनुभूति, विश्वास, साधना, सिद्धि और तंत्र-मंत्र के अर्थ समझाए गए हैं। एक स्थान पर लेखक लिखते हैं, वास्तव में हममें से अधिकतर धर्म, श्रद्धा व अध्यात्म का सही अर्थ तक नहीं जानते, और इसी वजह से भ्रमित रहते हैं। सभी धर्म ईश्वर आधारित नहीं होते, जैसे—बौद्ध व जैन धर्म। नास्तिक धर्म होने के बावजूद ये अध्यात्म के मार्ग हैं। लेखक यह भी लिखते हैं कि धार्मिक मान्यताओं में अत्यधिक विश्वास लोगों में एक कट्टरपन, दुराग्रह व मतांधता को जन्म देता है। लेखक के सूफी गुरु असद अल्लाह वली कहा करते थे—'मन ही ईश्वर है'। जब तक हमारे अंदर ही हमें एक शांति का केंद्र नहीं मिल जाता, हम रोज के छोटे-छोटे द्वंद्व के कारण भय और संदेहों से घिरे रहेंगे और हमेशा बाहर किसी सहारे की तलाश में भटकते रहेंगे।

संयोग से यह पुस्तक आज के संदर्भ में भी बहुत प्रासंगिक हो गई है। आज के दौर की दुविधाओं, मतांधता, आस्तिकता और नास्तिकता का सही मार्ग दिखाती है यह पुस्तक। लेखक एक जगह कहते हैं, 'आस्तिकता व नास्तिकता के दोनों मार्ग पार कर लेने के पश्चात मुझे यह अनुभव हुआ कि दोनों ही स्थितियाँ, गलत भी हैं और सही भी'। सूफीवाद व ईसाइयत की कुछ गुप्त परंपराएँ, जो ईश्वरीय धर्मों से जुड़ी हुई हैं, हमें अकसर इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि हम विश्वास के पार चले जाएँ। ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने वाली आध्यात्मिक परंपराएँ, मन के प्रशिक्षण या तैयारी हेतु मंदिरों का निर्माण करती हैं। अल्लामा प्रभु ने कहा है, इन दोनों अवस्थाओं से परे, वह हमारा परमेश्वर-योगेश्वर शून्य है। इस पुस्तक को पढ़ना अपने लिए आध्यात्मिक मार्ग खोजना है।

समय के सामने

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

लेखक : **अशोक वाजपेयी**

प्रकाशक : वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर-334003

पृष्ठ : 188

मूल्य : रु. 250/-

मीडिया, खासतौर पर अखबारों को लेकर यह शिकायत आम है कि इनमें साहित्य, संस्कृति और समाज के लिए स्थान निरंतर कम होता जा रहा है। यह स्थान थोड़ा बहुत है भी तो अन्य खबरों के साथ इसका बँटवारा इस तरह किया जाता है कि इसका होना, न होना एक-सा लगता है। लेकिन वरिष्ठ कवि, आलोचक और चिंतक अशोक वाजपेयी का एक स्तंभ पिछले 20 सालों से अखबार में नियमित रूप से छप रहा है। 'कभी-कभार' शीर्षक से छपने वाले इस स्तंभ की खूबसूरती यह है कि इसे एक साथ पढ़ कर आप अपने समय, समाज, साहित्य, संस्कृति, दर्शन, राजनीति को बेहतर और वैचारिक स्तर पर समझने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। इसी स्तंभ के लेख अब एक पुस्तक—'समय के सामने' में आए हैं। इस पुस्तक के लेख पहली बार यह अहसास कराते हैं कि अखबार का कोई स्तंभ कितना अहम हो सकता है। अशोक वाजपेयी भूमिका में स्वयं यह स्वीकार करते हैं, पिछले दो दशकों में एक लेखक के रूप में अपने समय, समाज और पड़ोस में जो हो रहा है, उसे हिसाब में लेने और उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का स्थान मैंने इस स्तंभ के जरिए बनाया है। मैं इन क्षेत्रों में जो हो रहा है उन पर लिखता, विचार करता रहा हूँ। आज राजनीति एक साथ सर्वग्रासी, हिंसक-आक्रामक और वैचारिक सघनता से लगभग शून्य हो गई है। उसमें एक लेखक की नागरिक सजगता एक तरह का प्रतिरोध है। वास्तव में यह संचयन सोच के कई दरवाजे एक साथ खोलता है। तीन हिस्सों में बँटी इस किताब का पहला हिस्सा पहल और झंझटें है। इसमें लेखक होने के झंझट में वह लेखक की राजनीति की चर्चा करते हैं। वह लिखते हैं, निर्मल वर्मा के बारे में मैंने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि सतही तौर पर तो वे वामपंथी राजनीति से शुरू कर दक्षिणपंथी राजनीति से सहानुभूति तक गए, लेकिन उनकी राजनीति ने उनके साहस, बौद्धिक सजगता, कालबोध और अंतःकरण के कुछ बुनियादी मूल्यों को घायल किया या दबाया नहीं। उनकी राजनीति उनकी सृजनात्मकता का हिस्सा उतना नहीं थी जितना कि उनकी सार्वजनिक बुद्धिजीविता का। इस लेख में अशोक वाजपेयी लेखक की राजनीतिक प्रतिबद्धताओं को लेकर चर्चा करते हैं। यह चर्चा आज और भी अधिक प्रासंगिक हो गई है। लेखों के इस संचयन में अन्याय और लेखक, मातृभाषाओं की अवज्ञा, बहु-सांस्कृतिकता, अस्मिता, संस्कृति और सरकार, चुप्पी का अर्थ, छद्म नरमपंथ और मीडियाक्रिटी का वर्चस्व जैसे विषयों पर चिंतन है। मीडियाक्रिटी के वर्चस्व में अशोक वाजपेयी मीडियाकारों के बढ़ते वर्चस्व

पर चिंता प्रकट करते हैं। वह लिखते हैं, हिंदी साहित्य के संदर्भ में देखें तो पूरे देश के विश्वविद्यालयी विभागों और प्रक्रियाओं पर भी मीडियाकारों का ऐसा कड़ा वर्चस्व पहले कभी नहीं हुआ था, जितना आज है। वे मोटी तनख्वाहें पाते हैं और साहित्य के बारे में अधिकतर मोटी अक्ल से काम लेते हैं और वैसा ही अक्स छात्रों में विकसित करते हैं। इस लेख में अशोक वाजपेयी की प्रतिबद्धताएँ साफ तौर पर उजागर होती हैं। एक लेखक की नजर जिन जरूरी मुद्दों पर पड़नी चाहिए, उन सब पर इस संचयन में आपको लेख मिलेंगे। किताब का दूसरा हिस्सा-कुछ हट कर है। लेकिन यह कुछ हट कर भी वास्तव में निहायत जरूरी है। सत्ता और सच, राजनीति से बची जिंदगी, साहित्य की इमरजेंसी किट, हिंदी की चिंता के लिए, जनसंघर्ष और लेखक जैसे विषयों पर लेखक ने गंभीर चिंतन को अपने लेखों का आधार बनाया है। पुस्तक के अंतिम हिस्से 'उम्मीद और खतरे' में भी लेखक की चिंताएँ वाजिब हैं। वह एक तरफ राजनैतिक भूल-चूक पर बात करते हैं तो दूसरी तरफ साहित्य के पक्ष में और हिंदीजीवियों से उम्मीद पर चर्चा करते हैं। सरकार और लेखक में वह सरकार के लेखक से रिश्तों पर बात करते हैं। वह लिखते हैं, सरकार से लेखक का संबंध हमेशा ही एक जटिल मामला रहा है। स्वयं भारतीय प्रजातंत्र में यह संबंध और उसके बारे में व्यापक समझ बदलते रहे हैं। इधर मराठी साहित्य सम्मेलन को महाराष्ट्र सरकार द्वारा दिए गए अनुदान और सम्मेलन में लेखकों द्वारा की गई सरकार की आलोचना को लेकर एक विवाद छिड़ गया है। इस दशकों पुरानी बहस को अशोक वाजपेयी ने पुनर्जीवित किया है। लेकिन अच्छी बात यह है कि इसमें उनकी राय साफ दिखाई देती है। आप अशोक वाजपेयी से असहमत हो सकते हैं, लेकिन इस संचयन के बहाने आप जान सकते हैं कि किस तरह छोटी-छोटी घटनाएँ साहित्य, समाज, राजनीति, संस्कृति और इतिहास से जुड़ी होती हैं। इस संचयन को पढ़ना अपने समय के सामने खड़ा होना है।

नीलकंठ का स्वप्न

समीक्षक : **दिनेश पाठक**
लेखक : **जगदीश तोमर**
प्रकाशक : आलोकपर्व प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली
पृष्ठ : 176
मूल्य : रु. 450/-

स्वतंत्रता के इन सात दशकों में बहुत कुछ बदला है जिन राष्ट्रीय मूल्यों को सामने रखकर अनेकानेक क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रसमर में अपने प्राणों की आहुति दी थी, दशक-दर-दशक वे नेपथ्य में विलीन होते जा रहे हैं और उनका स्थान ले रही है स्वार्थजनित राजनीतिक नेतृत्व की वह लालसा जिसमें राष्ट्रवादी सोच अवसर विशेष पर रस्म अदायगी और प्रदर्शन तक सीमित रह गई है। ऐसी परिस्थितियों में यदि राष्ट्र को सशक्त, समृद्ध बनाने हेतु अपने उत्तरदायित्व बोध के चलते व्यक्तिगत सुखों और संबंधों को दरकिनार करते हुए राष्ट्र आराधना में संलग्न पात्रों को एक कथा सूत्र में पिरो कर समाज के सामने राष्ट्र चेतना जागृत करने का प्रयास यदि कोई लेखक उपन्यास के माध्यम से करता है तो वह साधुवाद का पात्र है। समीक्षाधीन पुस्तक का वह लेखक है आचार्य जगदीश तोमर जो स्वयं राष्ट्रवादी सोच के साथ 75 वर्ष की आयु में आज भी न केवल सतत रचना कर्म में सक्रिय हैं बल्कि प्रेमचंद सृजन पीठ इंदौर के निदेशक रहते हुए नवाचार के प्रोत्साहन में सदैव अग्रणी भी रहे हैं। आचार्य जगदीश तोमर के व्यक्तित्व से ही प्रेरित प्रतीत होता है। प्रस्तुत उपन्यास का केंद्रीय पात्र अमल जो कथा प्रभाव के साथ-साथ अमल से कुँवर अमरेंद्र प्रताप सिंह और फिर स्वामी अमलानंद में परिवर्तित हो जाता है।

सहायक पात्र सुबोध बाबू की यादों में फड़फड़ा रहे अमल के जीवन पृष्ठ स्थान-स्थान पर सुबोध बाबू के राष्ट्र आराधना मिशन में अमल के योगदान को रेखांकित करते चलते हैं। देखा जाए तो कथानक इसी बहाने राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण ऐसे विचार पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है जिन्हें आज आजादी के सात दशक बाद एक बार पुनः नई पीढ़ी के मन-मस्तिष्क में सँजोने की महती आवश्यकता प्रतीत हो रही है। उपन्यास का केंद्रीय भाव स्पष्ट करता ऐसा ही विचार लेखक ने अमल दा से एक स्थान पर कहलवाया है, "हम श्रेष्ठ कलाविद हो सकते हैं, विश्व की सुंदरतम मूर्तियाँ गढ़ सकते हैं, संगीत नृत्य और साहित्य में श्रेष्ठतम रचनाएँ कर सकते हैं, आध्यात्मिक क्षेत्र में विश्व के समक्ष उच्चतम ज्ञान प्रकट कर सकते हैं, किंतु यदि हम अशक्त हुए तो किसी दिन सब कुछ व्यर्थ हो जाएगा, आतताई हमारा सब कुछ नष्ट कर देंगे। इसलिए शक्ति की उपासना हमारी शीर्ष प्राथमिकता होनी चाहिए। दीन दुर्बल के मुँह से विश्वमंगल का संदेश शोभा नहीं देता। इसलिए आओ हम सबसे पहले शक्ति साधक बनें।" उपन्यास पढ़ने के दौरान कई बार बंकिम चंद्र चटर्जी के 'आनंदमठ' का स्मरण हो उठता है। घटनाक्रम स्वतंत्रता के बाद का है इसलिए जहाँ आनंदमठ के संन्यासी पात्रों का एकमात्र उद्देश्य भारत माता को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लक्ष्य को समर्पित रहकर फिरंगिओं से संघर्ष तक सीमित रहा, वहीं प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों को वर्तमान देश काल की सामाजिक, राजनीतिक एवं मानसिक विद्रूपताओं से जूझते हुए राष्ट्र आराधना में रत रहना है। हालाँकि वर्तमान में राजनीतिक व्यवस्था साधु-संन्यासियों का प्रकारातर रूप से काफी हद तक सामाजिक दोहन करने में संलिप्त रहती है, जिसमें बड़े-बड़े मठाधीश और धर्माचार्य सम्मिलित होते हैं। लेकिन जिस प्रकार का चिंतन उपन्यास के केंद्रीय पात्रों के परस्पर वार्तालाप और गतिविधियों से उत्पन्न होता है, उससे यह प्रश्न भी मन-मस्तिष्क में कौंधता है कि क्या अब समय आ गया है कि साधु-संन्यासियों को एक बार फिर अरण्य से निकलकर देशकाल और समाज के शुद्धि यज्ञ में आहुति देनी होगी? क्योंकि इसी उपन्यास के एक पात्र के मुख से लेखक ने यह भी कहलाया है कि, "संन्यासी होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि देश से आपका कोई वास्ता ही नहीं रह जाए। मेरे विचार से एक संन्यासी की परिधि में समस्त मानवता का मुख्य रूप से उसकी अपनी मातृभूमि का कुशलक्षेम एक पावन दायित्व के रूप में अवश्य उपस्थित रहता होगा।"

दुर्भाग्यवश देश का बहुत बड़ा क्षेत्र तमाम समस्याओं और संकटों से जूझ रहा है, देश के भीतर और चतुर्दिक सीमाओं पर गंभीर रक्षा चुनौतियाँ खड़ी हुई हैं, हम उनसे आखिर कब तक बेखबर या विरक्त रह सकते हैं। राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के प्रति हमारी यह तटस्थता कितनी भयावह है, इस बात को हमारे देशवासी पता नहीं कब समझेंगे। मुझे लगता है कि आज वैसे ही लक्ष-लक्ष नवयुवक देशभक्तों के आगे आने की आवश्यकता है, जैसे वे कभी आजादी की लड़ाई के दौरान सामने आए थे। लेखक उपन्यास के कथानक के माध्यम से स्पष्ट संदेश देता है किंतु इस संदेश की उपादेयता/सामायिकता और अधिक प्रभावी हो जाती यदि वह वर्तमान राजनीतिक एवं सामाजिक परिदृश्य के उस स्याह पक्ष को भी अपनी धारदार लेखनी से कथानक में शामिल करते हुए इंगित करता/उजागर करता, जिससे हम सभी परिचित हैं। मेरे विचार से तब उपन्यास का संदेश अधिक तीव्रता से पाठक के मन-मस्तिष्क को झकझोरता और कथानक की रोचकता भी बढ़ जाती, क्योंकि तब कदाचित इस खलपात्र विहीन कथानक में समाज के बगुला भगतों को उजागर किया जा सकता था। हालाँकि संपूर्ण उपन्यास में मानवी अंतर्द्वंद्वों के सूक्ष्म चित्रण के माध्यम से लेखक ने काफी कुछ कहने का प्रयास किया है लेकिन वह अधिक मुखर होता तो पाठक उसे सराहता। एक वीतरागी और राष्ट्र सेविका के मध्य पनप रहे 'अनकहा प्रेम' भी अत्यधिक सौम्यता से चित्रित किया गया है। हम यह भी कह सकते हैं कि कथानक में स्थान-स्थान पर वर्णित चाय, पान, मोबाइल वार्तालाप, और दूरदर्शन आदि का उल्लेख यदि कथानक से निकाल दिए जाए तो संपूर्ण उपन्यास चौथे दशक की कोई कथा प्रतीत होगा। संपूर्ण उपन्यास में मानसिक प्रश्न उत्तर या जिसे हम पात्र का अंतर्द्वंद्व भी कह सकते हैं, के साथ ही विभिन्न पात्रों के परस्पर वार्तालाप के माध्यम से देश काल और समाज से संबंधित कई सवाल उठाए गए हैं जिनमें से कुछ अनुत्तरित भी रह गए हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कथा नायक द्वारा उठाया गया प्रश्न कि, "शारीरिक और आत्मिक बल में से चुनाव की स्थिति में किसे चुनना चाहेंगे और उसका उत्तर यदि एक को चुनने की बात आती है तो निःसंदेह शारीरिक बल प्रथम होगा" और यही इस उपन्यास का सार संदेश भी है।

कितने मोर्चे

वंदना यादव का यह उपन्यास अपने आप में अनूठा है। अनूठा इसलिए कि अब तक सेना की पृष्ठभूमि और उसमें भी खास तौर पर हमारे फौजियों की अकेली रह रही बीवियों की व्यथा और उनकी कथा का इस उपन्यास में बहुत ही रोचक ढंग से ताना-बाना बुना गया है। ऐसा शायद पहली बार हुआ है कि स्त्री नज़रिए से किसी ने इस संदर्भ में अपनी...अपने मन की बात कही हो। यह अलग नज़रिया भी इस उपन्यास को आम की श्रेणी से हटा कर ख़ास बनाता है।

समीक्षक : **राजीव तनेजा**

लेखिका : **वंदना यादव**

प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली

पृष्ठ : 368

मूल्य : रु. 350/-

रोज़मर्रा की ज़िंदगी के मुद्दों को लेकर इस उपन्यास में उनका विस्तार से विवरण या यूँ कह लें कि चित्रण किया गया है, तो भी गलत नहीं होगा। इसे लेखिका के लेखन की सफलता ही कहेंगे कि 350 पृष्ठों से भी ज्यादा लंबा होने के बावजूद यह उपन्यास कहीं पर भी शिथिल नहीं पड़ता, बोझिल नहीं लगता। एक बार उपन्यास पढ़ना शुरू करने के बाद पाठक उसे पूरा पढ़ने को मजबूर हो जाता है। सरल शब्दों से लैस वंदना यादव का धाराप्रवाह लेखन अपनी रौ में पढ़ने वालों को अपने साथ...अपनी ही दिशा में बहा ले जाता है।

किस तरह की तकलीफों से हमारे फौजियों की अकेली रह रही पत्नियाँ और उनके बच्चे अपनी रोज़मर्रा की जिंदगी में रू-ब-रू होते हैं, इसका पता भी हमें इस उपन्यास को पढ़ कर ही चलता है। जिस तरह के जर्जर हालत वाले फ्लैटों में रह कर उन्हें अपने दिन-रात काटने पड़ते हैं, वह भी हमें इसी उपन्यास से पता चलता है। अकेले रह कर किसी महिला के लिए बच्चों की परवरिश करना, उन्हें अच्छे संस्कार देना, अच्छी शिक्षा देना कितना मुश्किल है, उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक इन सभी घटनाओं को खुद झेलता एवं महसूस करने लगता है।

इस उपन्यास में जहाँ एक तरफ बच्चों की शिक्षा, उनके भविष्य के बारे में चिंता जताई गई है, वहीं दूसरी तरफ प्रेम विवाह, महिलाओं का बाहर नौकरी कर खुद अपने वजूद, अपनी अलग पहचान हासिल करने की इच्छा को भी बखूबी दिखाया गया है। लंबे समय बाद मिल रहे पति-पत्नी के बीच प्यार, उनकी आपसी नोकझोंक, बच्चों के सुखद भविष्य की कामना एवं चिंता, सैन्य अस्पतालों में हो रही लापरवाही, मिलेट्री एरिया में सिविल वर्कर्स के लिए ज़िम्मेदार 'एम.ई.एस.' की बदइंतज़ामी, अवैध एवं अवांछित लोग, ज़्यादा माँग के चलते नौकरानियों की मनमर्जी, अनुशासन एवं सिविलियंज़ के प्रति फौजियों और उनके परिवारों का नज़रिया सहित बहुत-से अनेक मुद्दों को प्रभावी ढंग से छुआ गया है।

सब कुछ हमें अपने आस-पास घटता हुआ प्रतीत होता है। पढ़ते समय ऐसा एक बार भी नहीं लगा कि हम किसी निर्जीव किताब को पढ़ रहे हैं। हमेशा ऐसा ही लगा कि सब कुछ हमारे सामने ही चलचित्र के माफिक चल रहा है। इस उपन्यास को और अधिक चुस्त एवं क्रिस्प बनाने के लिए इसमें बार-बार लिफ्ट का खराब होने और उसके हर बार के विस्तृत विवरण से शायद बचा जा सकता था।

सबसे बड़ी खूबी इस उपन्यास कि मुझे यह लगी इसमें कहीं भी कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। सरल एवं प्रचलित शब्दों के ज़रिए ही लेखिका ने अपनी.. अपने मन की बात कही है। शब्दों का सरल होना इस उपन्यास की विस्तृत पहुँच के मंसूबे को अमली जामा पहनाने में पूरी तरह सक्षम है।

हिंदी के नौ सारथी

रिंकल शर्मा

हिंदी के नौ सारथी पुस्तक, हिंदी साहित्यकारों, यथा—अशोक चक्रधर, सुरेंद्र शर्मा, कुँवर बेचैन, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, अरुण माहेश्वरी, मीरा जौहरी, अरुण जैमिनी तथा नरेंद्र वर्मा के बारे में है जो वर्षों से हिंदी की सेवा में समर्पित रहे हैं और जो आज के समय में हिंदी के हस्ताक्षर माने जाते हैं। पुस्तक में इन नौ रचनाकारों के हिंदी के प्रति विचार, हिंदी के प्रति उनके योगदान एवं संघर्ष के साथ-साथ वर्तमान में हिंदी भाषा के समक्ष आ रही समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

फ्यूजन बुक्स, नई दिल्ली

पृ. 104; रु. 150.00

द विंची कोड

डैन ब्राउन

डैन ब्राउन की पुस्तक 'द विंची कोड' को विश्व के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले उपन्यासों में गिना जाता है। पुस्तक कई वर्ष पहले अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थी। इसके हिंदी रूपांतरण का इंतजार पाठकों को लंबे समय से था। पुस्तक का हिंदी अनुवाद, साहित्यालोचना और अनुवाद के क्षेत्र में सक्रिय मदन सोनी द्वारा किया गया है। रहस्य, रोमांच और सनसनी से भरपूर यह पुस्तक अंत तक पाठकों को बाँधे रखती है। पुस्तक 'द विंची कोड' पहले पन्ने से ही रोचक हो जाती है तथा एक के बाद एक रोमांचक घटनाओं से पाठक जुड़ा हुआ महसूस करता है।

मंजुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

पृ. 532; रु. 450.00

प्रतिनिधि कहानियाँ

अखिलेश

प्रस्तुत संकलन में लेखक ने अपनी जिन छह कहानियों को प्रस्तुत किया है, वे हैं—शृंखला, वजूद, यक्षगान, जलडमरूमध्य, शापग्रस्त तथा चिट्ठी। इन कहानियों की विशेषता है कि ये पाठक से ही नहीं बात करती चलतीं, बल्कि साथ-साथ खुद उनके भीतर भी कई तरह के समानांतर संवाद चलते रहते हैं। वे खुद भी अपने चरित्रों से बातें करते हैं, उनके भीतर चल रहे संवाद को लेखक अपने तरीके से पाठकों के समक्ष लाता है।

राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ. 202; रु. 195.00

आप कैमरे की निगाह में हैं

राम नगीना मौर्य

जीवनानुभवों पर आधारित इस संग्रह की आठ कहानियाँ मानव मन के भीतर चल रही हलचलों पर केंद्रित हैं। लेखक मानते हैं कि संसार घटनाओं से भरा हुआ है, महत्त्वपूर्ण है हमारे देखने का नजरिया। इन्हीं अनुभवों व घटनाओं को वे शब्दों के माध्यम से कहानी का रूप देते हैं। पुस्तक की हर कहानी नई लगती है और कुछ मजेदार मोड़ लेती मन को आनंदित करती है। कहानियों की भाषा प्रवाहपूर्ण है।

रश्मि प्रकाशन, कृष्णा नगर, लखनऊ

पृ. 110; रु. 125.00

शिक्षा और शिक्षण

(एक चिंतन)

डॉ. संजय कुमार

शिक्षा का संबंध सिर्फ साक्षरता से नहीं, अपितु जीवन की सार्थकता से है। शिक्षा आत्मसजगता विकसित कर, जीवन के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती है। शिक्षा अंतर्निहित संभावनाओं को उन्मुक्त कर, अर्थपूर्ण जीवन का निर्माण करती है। शिक्षा क्या है? उसका वर्तमान स्वरूप कैसा है? शिक्षा कैसी होनी चाहिए? इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर इस पुस्तक में दृष्टिकोण रखने का प्रयास किया गया है। शिक्षकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों तथा नीति निर्धारकों आदि के लिए यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है।

एजुक्रिएशन पब्लिशिंग, द्वारका, दिल्ली

पृ. 102; रु. 200.00

चुनिंदा विज्ञान कथाएँ

राम शरण दास

विज्ञान कथाओं का उद्देश्य मनोरंजन करना नहीं है, वे सोच बदलती हैं, और इसलिए समय बिताने का साधन मात्र न होकर वे चिंतन को विस्तार देने का माध्यम बनती हैं। 'चुनिंदा विज्ञान कथाएँ' पुस्तक में छह विज्ञान कथाएँ शामिल की गई हैं, जो विश्व के छह चर्चित विज्ञान कथाकारों की लोकप्रिय रचनाओं का हिंदी भावानुवाद है। प्रस्तुत संग्रह में जालसाजी, प्रत्युत्तर, विस्मय लोक, केकड़ों का युद्ध, मस्त मौला और बियाबाँ नामक विज्ञान कथाएँ संकलित हैं, जो अलग-अलग विषयों पर आधारित हैं। प्रत्येक कथा के प्रारंभ में उसके संबंध में संक्षिप्त जानकारी भी दी गई है, जिससे कथा को समझने में मदद मिलती है। प्रत्येक रचना एक नई और अनूठी संकल्पना पर आधारित है तथा भाषा-शैली और कथानक की दृष्टि से विविधतापूर्ण है।

विज्ञान प्रसार, नोएडा, उत्तर प्रदेश

पृ. 82; रु. 70.00

एक किशोरी की डायरी

अने फ्रांक

अने फ्रांक द्वारा लिखित 'एक किशोरी की डायरी' विश्व की श्रेष्ठ कृतियों में गिनी जाती है। जर्मनी में जन्मी अने ने यह डायरी 1942 से 1944 के दौरान लिखी। इसमें युद्ध के बाद जर्मन कब्जे के दौरान डच लोगों की पीड़ा का आँखों देखा विवरण है। एक 15 वर्षीय किशोरी ने समाज की उथल-पुथल और अपने मन की कशमकश को बहुत ही ईमानदारी से व्यक्त किया है। जन्मदिन में उपहारस्वरूप मिली एक डायरी को जिस समय उन्होंने अपना सच्चा मित्र बनाया था, उस समय खुद उन्होंने भी कल्पना नहीं की होगी कि एक दिन यह डायरी विश्व की महानतम कृतियों में शुमार होगी। डायरी की प्रविष्टियों में जहाँ स्कूल की बातें हैं, तो सहेलियों की ईर्ष्या, मनपसंद खिलौनों की चाह, छुट्टियों में बिताए समय के साथ-साथ देश में तेजी से बदलते हालात का भी वर्णन है।

राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ. 266; रु. 695.00

एक टुकड़ा धूप

हरपाल

सहजता, सरलता, निश्छलता और उन्मुक्तता की भावना से परिपूर्ण इस कविता-संग्रह की कविताएँ प्रत्यक्ष जीवनानुभवों पर आधारित हैं। इन कविताओं में प्रकृति की सुंदरता और जीवन की सुंदरता एक-दूसरे में आसानी से घुलती-मिलती प्रतीत होती है। संग्रह को चार भागों में विभाजित किया गया है, यथा—औरतें और मुहब्बत, दौर-ए-तहरीक़, विद्रूप, बच्चे और हम। प्रत्येक भाग में विषयाधारित कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं।

जतन प्रकाशन,
कुरुक्षेत्र

पृ. 144; रु. 100.00

गाय गंगा गौरी

है हमारी जिम्मेदारी

शशिकांत 'सदैव'

गाय, गंगा और गौरी को बचाना अपने अस्तित्व को बचाना है। ये तीनों हैं तो हम हैं, धरती पर जीवन है। अतः हमारी जिम्मेदारी है कि हम इन तीनों के महत्त्व को समझें। प्रस्तुत पुस्तक इन तीनों का हमारे जीवन में महत्त्व और योगदान समझाने का प्रयास करती है। साथ ही, इन्हें कैसे बचाया जाए, क्या है संबंधित नियम, कानून, व्यवस्थाएँ और उपाय इन सबके बारे में विस्तृत जानकारी भी देती है। पुस्तक में इस विषय से संबंधित 45 पाठ दिये गए हैं।

डायमंड बुक्स, नई दिल्ली

पृ. 204; रु. 195.00

ज़िंदगी........ मेरी नज़र में

वीरेन्द्र कुमार मन्सोतरा

सीमा सुरक्षा बल में उप-कमांडेंट रह चुके वीरेंद्र कुमार मन्सोतरा शौक के तौर पर कविताएँ लिखते हैं। अपनी कविताओं में वह निरंतर संघर्ष करने, हार न मानने और जीवन में गतिशील बने रहने का संदेश देते हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह में बोल-चाल की भाषा में लिखी गई कविताओं का आनंद हर आयु-वर्ग के लोग उठा पाएँगे। पुस्तक में जीवन के विभिन्न पहलुओं, यथा—माँ की ममता, मोहब्बत भरा संसार, दो गज जमीन, मानवता, कल आदि पर कविताएँ प्रस्तुत की हैं।

रुचि पब्लिकेशन हाउस, उत्तम नगर, नई दिल्ली

पृ. 32; रु. 100.00

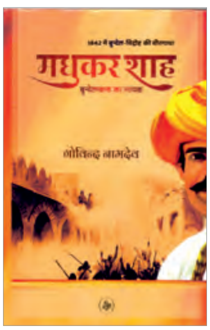

1842 में बुन्देल-विद्रोह की वीरगाथा

मधुकर शाह

बुन्देलखण्ड का नायक

गोविन्द नामदेव

भारत के स्वतंत्रता-आंदोलन के ऐसे न जाने कितने अध्याय होंगे, जो इतिहास के पन्नों पर अपनी जगह नहीं बना पाए। लेकिन पीढ़ियों तक जीवित रहने वाली किंवदंतियों में इतिहास के ऐसे अनदेखे सूत्र मिल जाते हैं। 1842 के बुन्देल-विद्रोह का प्रकरण भी ऐसा ही है। लिखित इतिहास में इस विषय पर विस्तार से कहीं कुछ उपलब्ध नहीं है, लेकिन कुछ सूचनाएँ अवश्य मिलती हैं। उन्हीं को आधार मानकर जुटाई हुई बाकी जानकारी को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। 'मधुकर शाहः बुन्देलखंड का नायक' कोई ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि इतिहास में उपलब्ध अल्प सूचनाओं और तथ्यों को आधार बनाकर बुन्देला विद्रोह के अमर नायक मधुकर शाह बुन्देला की जीवन-यात्रा को गढ़ा गया है।

राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ. 128; रु. 295.00

कहो चिरैया

प्रदीप शुक्ल

आकर्षक आवरण, मनोहारी रंगीन चित्रों से भरपूर एवं बाल मनोविज्ञान पर आधारित इस काव्य-संकलन में 51 कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं। ये कविताएँ बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें विविध मानवीय मूल्यों से भी अवगत कराती हैं। इस बाल कृति की नन्हा पौधा, सूरज बाबू, आओ बच्चों पेड़ लगाएँ, सुबह-सुबह आँगन में, धूप चिरैया, चाँद और मंगल आदि कविताएँ बच्चों में प्रकृति व पर्यावरण के प्रति रुचि जागृत करती हैं।

प्रकाशन विभाग,
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

पृ. 70; रु. 105.00

दुनिया केवल साहित्यकारों को ही याद रखती है : प्रो नंदकुमार यादव

पाँच जनजातीय भाषाओं में अनुवाद की त्रिदिवसीय कार्यशाला संपन्न

"दुनिया कभी भी राजनेता या अफसरों को याद नहीं रखती, दुनिया लेनिन, गाँधी, प्रेमचंद जैसे शब्द महारथियों को ही सदियों तक याद रखती है। इस

कार्यशाला में विकसित व अनूदित पुस्तकों से झारखंड की लोकभाषा व संस्कृति समृद्ध होगी।" यह उद्‌गार केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची के कुलपति प्रो. नंदकुमार यादव ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत तथा डॉ. रामदयाल मुंडा जनजातीय शोध संस्थान, राँची के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित बच्चों की पुस्तकों का पाँच जनजातीय भाषाओं में अनुवाद की कार्यशाला के समापन के अवसर पर व्यक्त किए। इस अवसर पर राँची विश्वविद्यालय में जनजातीय भाषा विभाग के प्रमुख प्रो. त्रिवेणीनाथ साहू विशेष अतिथि थे। इस कार्यशाला का आयोजन 26 से 28 मार्च, 2019 तक राँची के टीआरआई परिसर में किया गया।

उल्लेखनीय है कि इस कार्यशाला में न्यास द्वारा बच्चों के लिए प्रकाशित सुंदर चित्रमय 35 पुस्तकों का अनुवाद संताली, कुड़ुख, हो, खड़िश और मुंडारी भाषा में किया गया। तीन दिवसीय कार्यशाला में इन 35 पुस्तकों का अनुवाद, संपादन, टाईपिंग और डमी बनाने का कार्य किया गया।

समापन सत्र के प्रारंभ में टीआरआई के उपनिदेशक श्री चिंटू डोरायबुरू ने अतिथियों का स्वागत करते हुए कार्यशाला के उद्देश्य और कार्यविधि पर प्रकाश डाला। कार्यशाला का संचालन कर रहे न्यास के संपादक पंकज चतुर्वेदी ने टीआरआई और न्यास के बीच हुए करारनामे की जानकारी देते हुए कहा कि जल्दी ही ऐसी और कार्यशालाएँ होंगी, जिनमें अन्य दुर्लभ या लुप्त हो रही बोलियों पर काम होगा। इसके अलावा टीआरआई द्वारा प्रकाशित शोधपरक पुस्तकों के अनुवाद व उसका न्यास से प्रकाशन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के राँची में बिक्री केंद्र का कार्य भी शीघ्र ही टीआरआई के साथ मिलकर किया जाएगा।

इस अवसर पर प्रो. के.सी. टुडू, सोमा सिंह मुंडा, प्रो. मेरी एस. सोरेंग, डॉ. प्रदीप बोदरा आदि ने भी अपने अनुभव साझा किए। दिल्ली से आई 'ककसाड़' की संपादक श्रीमती कुसुमलता सिंह ने कार्यशाला में शामिल अनुभवी और युवा अनुवादकों के जोश, कार्य-प्रतिबद्धता की प्रशंसा की।

विदित हो कि इन 35 पुस्तकों का प्रकाशन बहुत जल्दी होगा और इन्हें जनजातीय बच्चों तक सीधे पहुँचाने की एक बड़ी योजना तैयार की जा रही है।

48वाँ लंदन पुस्तक मेला 2019

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 12 से 14 मार्च, 2019 की अवधि में लंदन के ओलंपिया में संपन्न लंदन पुस्तक मेले के 48वें संस्करण में भाग लिया। न्यास लंदन समेत अन्य विदेशी पुस्तक मेलों में भारतीय प्रकाशन जगत का प्रतिनिधित्व करता है। इस बार पुस्तक मेले में 60 देशों के 1700 से अधिक प्रदर्शकों ने लगभग 25 अंतरराष्ट्रीय पैवेलियनों में अपनी पुस्तकें प्रदर्शित कीं। इस बार के पुस्तक मेले में इंडोनेशिया मार्केट फोकस देश के रूप में उपस्थित था। इस नाते पुस्तक मेले में इंडोनेशिया का एक विशिष्ट पैवेलियन लगा था जहाँ अनेक साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ हुईं।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास पुस्तक मेले में भारत के प्रकाशन जगत का प्रतिनिधित्व करते हुए हिंदी एवं अंग्रेजी में लगभग 150 पुस्तकों के साथ उपस्थित था। महात्मा गाँधी के 150वें जन्मवार्षिकी मनाने के एक भाग के रूप में पुस्तक मेले में प्रकाशन विभाग, भारत सरकार ने महात्मा गाँधी पर एक विशिष्ट स्टैंड की स्थापना की थी जहाँ महात्मा गाँधी पर तथा उनके द्वारा लिखित पुस्तकें प्रदर्शित की गई थीं। साहित्य अकादेमी भी पुस्तक मेले में सम्मिलित हुआ। न्यास ने अपने स्टॉल पर गाँधीजी से संबंधित अपने प्रकाशनों का प्रदर्शन किया।

पुस्तक मेले के दौरान 'लंदन पुस्तक मेला अंतरराष्ट्रीय उत्कृष्टता सम्मान' की घोषणा की गई। अवार्ड विजेताओं में भारत के 'तूलिका पब्लिशर्स' तथा 'टाटा ट्रस्ट्स (भारत)' भी सम्मिलित थे। एनबीटी के स्टॉल पर अनेक प्रकाशकों, व्यापारियों तथा प्रख्यात हस्तियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की। उन्होंने भारत की प्रदर्शित पुस्तकों में गहरी रुचि दर्शाई। न्यास-निदेशक डॉ. रीता चौधरी ने कहा कि भारत के सबसे बड़े बहुभाषी प्रकाशकों में एक न्यास भारतीय भाषाओं की कृतियों के अनुवाद के मामले में एक अग्रणी की भूमिका में है। डॉ. चौधरी ने नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला के आयोजक होने के नाते नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला में विश्वभर के प्रकाशकों के लिए अवसरों के बारे में भी जानकारी दी। मेक्सिको में इसी वर्ष आयोजित होने वाले गुआडालाजरा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले में भारत के सम्मानित अतिथि देश होने के नाते इस पुस्तक मेले की निदेशक सुश्री मारिसोल शुल्ज से भी बात की। न्यास के प्रतिनिधिमंडल में न्यास में अंग्रेजी की संपादक सुश्री सुरेखा सचदेव भी सम्मिलित थीं।

प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के नए अध्यक्ष बने

प्रख्यात शिक्षाविद्, अध्यापक और लेखक, प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के नए अध्यक्ष बने हैं। उन्होंने न्यास-अध्यक्ष के रूप में 21 फरवरी, 2019 को अपना कार्यभार सँभाल लिया। प्रो. शर्मा मध्य प्रदेश में गवर्नमेंट पी.जी. कॉलेज में आचार्य के रूप में कार्य-उपरांत उच्चतर शिक्षा (ग्वालियर चंबल संभाग), मध्य प्रदेश के अतिरिक्त निदेशक के रूप में नियुक्त हुए। तदंतर, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक भी बने। शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक योगदान करने वाले प्रो. शर्मा मध्य प्रदेश उच्चतर शिक्षा परिषद के उपाध्यक्ष रहे। साथ ही, मध्य प्रदेश टेक्स्टबुक राइटिंग स्टैंडिंग कमिटी के अध्यक्ष के रूप में भी अपनी सेवाएँ दीं। प्रो. शर्मा छह से अधिक अकादेमिक पुस्तकों के लेखक होने के साथ-साथ चुनिंदा संकलित कृतियों के संपादक भी हैं। इसके अलावा, उनके अनेक शोध पत्र भी प्रकाशित हुए हैं।

प्रो. शर्मा ने न्यास-अध्यक्ष के रूप में कार्यभार सँभालने के बाद न्यास-सभागार में अपने पहले संवाद-संबोधन के रूप में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए संपूर्ण न्यास को अपना 'परिवार' बताते हुए कहा, "मैं न्यास को अपना परिवार समझते हुए सभी के साझा और समवेत सहयोग से मिल-जुलकर काम करूँगा। मैं आशा करता हूँ कि आप सबका सहयोग-सद्भाव मुझे मिलेगा।"

अहमदाबाद में पुस्तक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद के सहयोग से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 23 से 31 जनवरी, 2019 की अवधि में एक सप्ताह का एक लघु आवधिक पुस्तक प्रकाशन में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का आयोजन किया। पाठ्यक्रम का उद्घाटन गुजरात के राज्यपाल श्री ओ.पी. कोहली ने किया।

इस अवसर पर गुजरात यूनिवर्सिटी के कुलपति प्रो. हिमांशु पंड्या, तत्कालीन न्यास-अध्यक्ष प्रो. बल्देव भाई शर्मा तथा गुजरात यूनिवर्सिटी की प्रो. नीलोत्पला गाँधी ने अपने संबोधन किए। पाठ्यक्रम में 40 से अधिक प्रतिभागियों ने भाग लिया।

31 जनवरी, 2019 को समापन समारोह में गुजरात यूनिवर्सिटी की यू.एस.एल. की निदेशक डॉ. रंजना अरगड़े ने प्रतिभागियों से संवाद किए तथा उन्हें प्रमाण पत्र बाँटे। विदित हो कि इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रकाशन के विभिन्न आयामों, यथा-संपादन, उत्पादन, विक्रय एवं विपणन आदि के संबंध में जानकारी दी जाती है।

कार्यक्रम का समन्वय न्यास के श्री नरेंद्र कुमार ने किया।

श्रद्धांजलि : प्रो. नामवर सिंह नहीं रहे

हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक एवं आलोचक प्रो. नामवर सिंह का 19 फरवरी, 2019 को नई दिल्ली में देहांत हो गया। वे 92 वर्ष के थे। वाराणसी के बी.एच.यू. से उच्च शिक्षा प्राप्त प्रो. सिंह लंबे समय तक जे.एन.यू. में प्रोफेसर रहे। वैसे, उन्होंने सागर विश्वविद्यालय तथा जोधपुर विश्वविद्यालय में भी पढ़ाया। 1992 में जे.एन.यू. से सेवानिवृत्ति के उपरांत भी वे वहाँ 'प्रोफेसर एमेरिटस' के रूप में बने रहे। वे जे.एन.यू. में भारतीय भाषा केंद्र के पहले अध्यक्ष भी रहे। वे राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउंडेशन तथा प्रगतिशील लेखक संघ (एपवा) के अध्यक्ष रहे। प्रो. सिंह को महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का कुलपति भी नियुक्त किया गया। प्रो. नामवर सिंह ने अनेक पुस्तकों का सृजन किया। 'कविता के नए प्रतिमान', 'छायावाद' तथा 'दूसरी परंपरा की खोज' उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। 'कविता के नए प्रतिमान' पर उन्हें वर्ष 1971 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था।

प्रो. सिंह का राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से गहरा जुड़ाव रहा। न्यास की 'नवजागरण के अग्रदूत' पुस्तकमाला की अनेक पुस्तकों के वे प्रधान संपादक रहे। न्यास से उनकी एक पुस्तक 'नामवर सिंह : संकलित निबंध' भी प्रकाशित हुई थी। वे न्यास की परिषद के सम्मानित सदस्य भी थे।

धर्मेन्द्र पंत ने सुनील गावस्कर को भेंट दिया 'क्रिकेट विज्ञान'

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की पुस्तक 'क्रिकेट विज्ञान' के लेखक धर्मेन्द्र पंत ने पुस्तक की प्रति वरिष्ठ क्रिकेट खिलाड़ी श्री सुनील मनोहर गावस्कर को भेंट की। श्री गावस्कर ने पुस्तक को पढ़कर इस पर विचार देने का आश्वासन दिया।

पेरिस बुक फेयर में भारत तो नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में फ्रांस होगा अतिथि देश

भारत 2020 के पेरिस बुक फेयर में अतिथि देश होगा, जबकि दिल्ली में 2022 में आयोजित होने वाले विश्व पुस्तक मेले में फ्रांस अतिथि देश रहेगा। पेरिस बुक फेयर में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास (नेशनल बुक ट्रस्ट) भारत की ओर से प्रतिनिधित्व करेगा।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधिकारियों के मुताबिक, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और फ्रांस के राष्ट्रपति के बीच फरवरी 2018 में यह समझौता हुआ था।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ____________________

पता : ____________________

जिला : ________ शहर ________ राज्य ________ पिन कोड ________

फोन : ____________________ ई-मेल : ____________________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) ________ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) ________ ड्राफ्ट संख्या ________ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी ____________________ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

लेखकों के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पत्रिका का **सितम्बर-अक्तूबर, 2019** का अंक 'बा-बापू' विशेषांक होगा, इस अंक के लिए सामग्री **15 जून 2019** तक भेज सकते हैं।

लेखकों से निवेदन है :

1. सामग्री अधिकतम तीन हजार शब्दों तक हो।
2. पहले से छपी सामग्री न भेजें।
3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र आदि भी भेजें।
4. लेखक का चित्र, **पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं)** भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें।
5. किसी विशेष अवसर की सामग्री कम से कम चार महीने पहले भेजें।

सामग्री डाक से या ई-मेल से भेज सकते हैं। ध्यान रहे कि रचना कृति, यूनिकोड या फिर शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

संपादक (पुस्तक संस्कृति)

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत,

5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2, नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707758, 26707876

द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' के वार्षिक सदस्य बनें

वार्षिक सदस्यता शुल्क– अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.

पत्रिका का सदस्यता शुल्क भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्नांकित है :

Bank: **CANARA BANK**, Branch: **Vasant Kunj, New Delhi 110070**

A/C No.: **3159101000299**

IFSC CODE: **CNRB0003159**

इसके अलावा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय चेक, ड्राफ्ट या धनादेश भी भेजा जा सकता है।

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

मेरी यात्रा

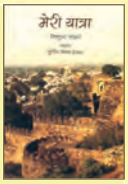

विष्णुभट गोडसे

अनुवाद : सुनील केशव देवधर

लेखक विष्णुभट द्वारा मूल मराठी में लिखित तथा सुशील केशव देवधर द्वारा हिंदी में अनूदित पुस्तक मेरी यात्रा के केंद्र में झाँसी है। यह ऐतिहासिक यात्रा-वृत्तांत लेखक द्वारा सन् 1857 के प्रसंग को स्वयं अनुभव कर लिखा गया है। लेखक ने प्रस्तुत वृत्तांत में सन् 1857 के विद्रोह के दौरान झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के किले की घेराबंदी के दिनों का आँखों देखा हाल वर्णित किया है।

पृ. 156; रु. 190.00

समुद्रतटीय आपदाएँ
चक्रवात, सूनामी एवं अन्य विपदाएँ

एच.एन. श्रीवास्तव

अनुवाद : कुमकुम चतुर्वेदी

विश्व के विभिन्न भागों में एक बड़ी जनसंख्या तटीय क्षेत्रों के निकट रहती है। काफी संख्या में पर्यटक भी इन स्थानों पर आते हैं। यद्यपि तटीय क्षेत्र अनेक प्राकृतिक और मानवजनित जोखिमों के लिए उद्भासित रहते हैं। इनमें उष्ण-कटिबंधीय चक्रवात, हरीकेन सूनामी, समुद्र के जलस्तर में अत्यधिक वृद्धि, तेल रिसाव और अन्य जोखिम शामिल हैं। सरल भाषा में लिखी यह पुस्तक न सिर्फ तटीय परिवेश का वर्णन करती है, बल्कि अनेक जोखिमों के बारे में भी बताती है। आशा की जाती है कि यह पुस्तक समुद्रतटीय जनसंख्या और पर्यटकों को सुरक्षात्मक उपाय अपनाने के लिए शिक्षित करने में उपयोगी होगी।

पृ. 134; रु. 185.00

नीली नदी का सुनहरा पत्थर

सुरेश यादव

चित्र : फज़रुद्दीन

न्यास की नेहरू बाल पुस्तकालय पुस्तकमाला के अंतर्गत आठ से 11 वर्ष के बच्चों के लिए प्रकाशित इस पुस्तक में बच्चों को प्रकृति की सुंदरता से रू-ब-रू करवाने का प्रयास किया गया है। किस प्रकार सूरज की रोशनी पड़ने पर पहाड़ों पर जमी बर्फ चमकती दिखाई पड़ती है और मन सुखद आश्चर्य से भर जाता है। पहाड़ों की चोटियों पर जमी बर्फ पिघलकर नदी का रूप लेती है। नदियों में गोल-मटोल, छोटे-बड़े पत्थर होते हैं तथा रंग-बिरंगी मछलियाँ नीली नदी के पानी में तैरने का आनंद लेती हैं। भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

पृ. 14; रु. 40.00

सुनो मैं समय हूँ
(गुजरे हुए कल, वर्तमान और आने वाले कल का भी)

कृष्ण किसलय;

चित्र : अरुप गुप्ता

विज्ञान केवल समीकरण और सिद्धांत नहीं है, बल्कि जिज्ञासा, सृजनात्मकता और नवाचार भी है। विज्ञान के पद्चिह्न समय के सोपान पर कड़ी मेहनत, अटूट लगन और महामेधा से उत्कीर्ण होते हैं। यह पुस्तक इस बात को विशेष ध्यान में रखकर तैयार की गई है कि जीवन व जगत से संबंधित कई तरह के वैज्ञानिक ज्ञान की संक्षिप्त जानकारी एक जगह उपलब्ध हो सके और स्कूलों-कॉलेजों में जाने वाले नई पीढ़ी, खासकर ग्रामीण व कस्बाई समाज के पाठकों की वैज्ञानिक-दृष्टि के विस्तार में सहायक बन सके। पुस्तक में वैज्ञानिक खोजों से संबंधित तथ्यों को ऐतिहासिक घटनाओं-विवरणों के प्रामाणिक संदर्भों के साथ प्रसंगवश क्रमबद्ध तरीके से सरल भाषा, सहज शैली में इस तरह रखा गया है कि पाठक को एक उपन्यास के कथा-क्रम जैसा भी अहसास होगा।

पृ. 170; रु. 105.00

विश्व का वैभव

आचार्य विजय रत्नसुंदरसूरि

जैन संत लेखक, आचार्य विजय रत्नसुंदरसूरि, एक सुंदर समाज और स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण के लिए क्या सोचते हैं, वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा के अनुरूप एक सर्वसमावेशी और हिंसामुक्त, शांत-सुंदर समाज और राष्ट्र की रचना को लेकर उनके क्या विचार हैं। यह पुस्तक उनके इन विचारों का पुष्प-गुच्छ है।

पृ. 108; रु. 130.00

घुमक्कड़ का चातुर्मास

राकेश अचल

विश्व के सर्वाधिक विकसित माने जाने वाले देश अमेरिका के अंतर्जगत में झाँकते और उसका आकलन-विश्लेषण करते एक वरिष्ठ पत्रकार की कलम से निकला यह रोचक और पठनीय यात्रावृत्त। अमेरिका में रह रहे भारतीयों की ऊहापोह वाली स्थिति पर भी लेखक ने पैनी नज़र डाली है। एक पाठक इस पुस्तक को पढ़ते हुए लेखक के आँखों देखे को स्वयं के आँखों देखे जैसा अनुभूत करता है।

पृ. 174; रु. 215.00

मैं हिमालय की काली नदी

प्रकाश पंत

हिमालय से निःसृत काली नदी दरअसल केवल एक नदी ही नहीं, वरन् नेपाल तथा नेपाल-भारत सीमा पर घटी घटनाओं के इतिहास की मूक साक्षी और दृष्टा भी रही है। विद्वान लेखक ने पुस्तक में काली नदी को प्रथम पुरुष के रूप में प्रस्तुत कर 'मैं' की शैली में उन्हीं घटनाओं-गतिविधियों को बड़ी ही रोचक भाषा में प्रस्तुत किया है जिसे पढ़कर एक पाठक उस नदी के साथ-साथ इतिहास की धारा में बहने लगता है।

पृ. 64; रु. 85.00

हेपाउ जादोनांग

जगदम्बा मल्ल

भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के साथ पूर्वोत्तर के क्रांतिकारियों की गाथा को भारतीय इतिहास में दर्ज करवाने की दिशा में यह पुस्तक एक विनम्र प्रयास है। प्रस्तुत पुस्तक स्वतंत्रता सेनानी जादोनांग की संघर्षगाथा का विस्तारपूर्वक वर्णन करती है। यह इस महापुरुष और देशभक्त नागा स्वतंत्रता सेनानी के कार्यों पर प्रकाश डालने तथा उनके प्रेरणादायक जीवन प्रसंग राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास है। पुस्तक को छह अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है।

पृ. 130; रु. 175.00

कुम्भ

अनिता जैन भटनागर

चित्र : पार्थ सेनगुप्ता

प्रस्तुत पुस्तक नेहरू बाल पुस्तकालय पुस्तकमाला के अंतर्गत आठ से 10 वर्ष के बच्चों के लिए प्रकाशित की गई है जिसमें बच्चों को बहुत ही रोचक ढंग से कुम्भ मेले की संपूर्ण जानकारी प्रदान की है। मेला कितने वर्षों बाद आयोजित किया जाता है, मेला कहाँ-कहाँ आयोजित होता है, मेले में श्रद्धालुओं को क्या-क्या सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाती हैं जैसी जानकारियों से बच्चों को अवगत करवाया गया है। कहानी में आकर्षक रंगीन चित्रों के माध्यम से बच्चों को बताया गया है कि किस प्रकार मेले में अलग-अलग भाषाओं और संस्कृति के लोगों के आने से राष्ट्रीय एकता मज़बूत होती है।

पृ. 22; रु. 50.00

सब्जी मंडी

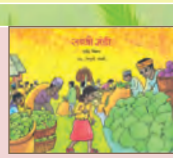

सर्वेंद्र विक्रम

चित्र : मिष्टुनी चौधरी

नेहरू बाल पुस्तकालय पुस्तकमाला के अंतर्गत छह से आठ वर्ष के बच्चों के लिए प्रकाशित की गई इस पुस्तक में बच्चों को कहानी के माध्यम से सब्जी मंडी की सैर करवाने का प्रयास किया गया है। किस प्रकार एक सब्जी मंडी में भीड़ में लोग सिर पर, साइकिल पर, ठेलों पर, ट्रकों में सब्ज़ियाँ लादते नज़र आते हैं, इसे रंगीन सजीव होते चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

पृ. 22; रु. 50.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761

ई-मेल : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in